खण्ड

4

भारतीय कालजयी साहित्य का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद

इकाई 11
भारतीय कालजयी साहित्य : एक परिचय 141

इकाई 12
प्राचीन भारतीय कालजयी साहित्य का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद 154

इकाई 13
मध्यकालीन भारतीय कालजयी साहित्य का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद 161

इकाई 14
आधुनिक भारतीय कालजयी साहित्य का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद 173

खण्ड 4 का परिचय

प्रस्तुत पाठ्यक्रम का खण्ड चार भारतीय कालजयी साहित्य का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद शीर्षक से है। खण्ड में कुल चार इकाइयां हैं जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है:

इकाई 11 का शीर्षक है **भारतीय कालजयी साहित्य : एक परिचय**। प्रस्तुत इकाई प्रमुख भारतीय कालजयी रचनाओं से आपका परिचय करवाएगी जिसके माध्यम से विषय में प्रवेश करना सरल हो पाएगा। अनुवाद की दृष्टि से कुछेक कालजयी रचनाएं बेहद महत्वपूर्ण हैं जिनका विभिन्न भारतीय भाषाओं मे विभिन्न रूपों में अनुवाद हुआ है। इस इकाई के माध्यम से आप उन रचनाओं से परिचित हो सकेंगे।

इकाई 12 का शीर्षक है **प्राचीन भारतीय कालजयी साहित्य का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद।** पिछली इकाई से आगे यह इकाई प्राचीन भारतीय कालजयी रचनाओं के अनुवाद और उनमें आने वाली समस्याओं की ओर संकेत करती है।

इकाई 13 का शीर्षक है **मध्यकालीन भारतीय कालजयी साहित्य का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद।** इस इकाई में मध्यकाल की अवधारणा समझाते हुए भारतीय मध्यकाल, इस काल खण्ड में लिखी गई कालजयी रचनाएं, उनके प्रभाव एवं विभिन्न भारतीय भाषाओं मे हुए परस्पर अनुवाद पर विस्तार से चर्चा की गई है।

इकाई 14 का शीर्षक है **आधुनिक भारतीय कालजयी साहित्य का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद।** इस इकाई मे आधुनिक भारतीय कालजयी रचनाओं पर सीधे चर्चा करने से पूर्व आधुनिकता, आधुनिक भारतीय साहित्य लेखन के प्रेरक तत्व आदि पर चर्चा की गई है। इसके पश्चात् प्रमुख आधुनिक भारतीय कालजयी रचनाओं एवं उनके अनुवादों पर प्रकाश डाला गया है।

समग्र रूप से यह पाठ्यक्रम **अनुवाद एवं भारतीय भाषाएं** विषय से जुड़े विभिन्न बिन्दुओं की विस्तार से चर्चा करता है।

इकाई 11 भारतीय कालजयी साहित्य : एक परिचय

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 कालजयी साहित्य से अभिप्राय

11.3 कालजयी साहित्य या क्लासिक्स की भारतीय साहित्य में अवधारणा

11.4 भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद की आवश्यकता

11.5 भारतीय कालजयी साहित्य के विभिन्न प्रकार

11.6 भारतीय कालजयी साहित्य : एक परिचय

11.7 भारतीय कालजयी साहित्य का अनुवाद के माध्यम से रसास्वाद

11.8 सारांश

11.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे :

- कालजयी साहित्य क्या है;
- कालजयी साहित्य की पहचान कैसे होती है;
- कालजयी रचनाओं का महत्व एवं उनकी आवश्यकता;
- भारतीय साहित्य की मुख्य कालजयी कृतियां कौन-सी हैं; और
- कालजयी रचनाओं के विभिन्न भारतीय भाषाओं में हुए अनुवाद।

11.1 प्रस्तावना

पिछले खण्ड की इकाइयों में आपने अनुवाद कार्य के महत्त्व और आवश्यकता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की है। प्राचीन काल से लेकर अब तक अनुवादों की परम्परा के बारे में भी आप जानते हैं।

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम सबसे पहले यह विचार करेंगे कि कालजयी साहित्य किसे कहते हैं तथा इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए कालजयी साहित्य के महत्व, कालजयी साहित्य की भारतीय अवधारणा आदि महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे।

11.2 कालजयी साहित्य से अभिप्राय

साहित्य की प्रत्येक परम्परा में ऐसी रचनाएँ सदैव आती रही हैं जो किसी एक देश काल तक सीमित नहीं रहतीं। जिस समय और जिस स्थान पर ये रचनाएँ लिखी जाती हैं उस समय और उस स्थान में तो उनकी श्रेष्ठता स्वीकार की ही जाती है, पर उसके बाहर भी उनको महत्त्व प्राप्त होता है। ऐसी रचनाओं को अंग्रेजी में क्लासिक कहा जाता है। क्लासिक के लिए हिन्दी में तीन संज्ञाओं का इस्तेमाल हो रहा है- कालजयी साहित्य, गौरवग्रंथ और श्रेण्य साहित्य। क्लासिक का लक्षण पहली संज्ञा पर अच्छी तरह घटता है, इसलिए हमने यहाँ उसी को स्वीकार

किया है। किसी भी कालजयी रचना में जीवन और जगत का इकहरा अनुभव नहीं होता। इसके कारण वह किसी एक देश काल में सीमित नहीं रहती। उसकी प्रासंगिकता आने वाले समय में लगातार बढ़ती जाती है। एक कालजयी रचना की हर युग में नये सिरे से व्याख्या की जाती रही है। वह अलग-अलग पाठकों के समुदायों में अलग-अलग अर्थ खोलती है। इसके साथ ही वह साहित्य की अपने बाद की परम्परा पर गहरा असर डालती है। क्लासिक्स अपने देश की संस्कृति का हिस्सा होते हैं। साथ ही वे अपने देश की संस्कृति को बनाने में भी बड़ी भूमिका अदा करते हैं। वे न केवल विरासत होते हैं, विरासत बनाते भी हैं। ग्रीक भाषा में सोफोक्लीज़ का ईदिपस नाटक, या महाकवि होमर का ओडिसी महाकाव्य कालजयी रचनाओं के उदाहरण हैं। भारतीय कालजयी रचनाओं में रामायण, महाभारत, तमिल भाषा का सिलप्पदिकारम्, कालिदास के नाटक और महाकाव्य या तुलसीदास का रामचरितमानस, रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि अथवा निराला की राम की शक्ति की पूजा कालजयी रचनाओं के उदाहरण हैं। आकार में छोटा या बड़ा होना रचना को कालजयी नहीं बनाता। महाभारत विश्व का सबसे बड़ा महाकाव्य है। इसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं। कालिदास का मेघदूत एक छोटा सा काव्य है। इसमें मात्र 100 श्लोक हैं। पर महाभारत भी क्लासिक है और मेघदूत भी। महाभारत ने भारतीय भाषाओं के साहित्य पर गहरा असर छोड़ा है। मेघदूत के अनुवरण पर संस्कृत में ही नहीं, अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं में भी कविताएँ लिखी गई हैं। यदि शास्त्रीय अथवा चिंतन प्रधान रचना का उदाहरण लेना चाहें तो श्रीमद्भगवद्गीता का नाम लिया जा सकता है।

11.3 कालजयी साहित्य या क्लासिक्स की भारतीय साहित्य में अवधारणा

क्लासिक्स युगप्रवर्तक या युगांतरकारी रचना होती है। वह जीवनमूल्यों को सहेजती है। संस्कृति की धरोहर बनती है। भारतीय साहित्य की परम्परा में दो काव्य क्लासिक्स की इस अवधारणा पर सबसे अधिक खरे उतरते हैं रामायण और महाभारत। रामायण के रचयिता वाल्मीकि हैं। संस्कृत काव्यों की परम्परा में इस रचना को आदिकाव्य भी कहा गया है। यद्यपि वेद या वैदिक साहित्य की रचना रामायण से पहले हो चुकी थी, पर लौकिक संस्कृत या लोकभाषा में रची गई पहली कृति होने से रामायण को आदिकाव्य कहा गया। दोनों का कथानक तथा वर्ण्य विषय की परिधि अत्यंत विस्तीर्ण है। दोनों में राष्ट्र की संस्कृति और आत्मा समाहित है। रामायण का मूल स्वर करुणा का है, जब कि महाभारत का मूल स्वर वैराग्य का है। इसीलिए रामायण में करुण रस की प्रधानता मानी गई और महाभारत में शांत रस की। वाल्मीकि की रचना प्रेम, स्नेह, ममता, वात्सल्य और सौहार्द की भावनाओं से ओतप्रोत है। महाभारत समाज में व्याप्त हिंसा, घृणा और कलह का यथार्थ चित्रण करता है, जिसकी परिणति वैराग्य में होती है। वाल्मीकि की रचना आदर्शपरक है, व्यास की यथार्थ परक। एक में भावतत्त्व की प्रधानता है, दूसरे में बुद्धितत्त्व की।

हमारी साहित्य परम्परा में क्लासिक्स रामायण और महाभारत के उदाहरणों से ही बखूबी परिभाषित किया गया है। दोनों को आर्ष काव्य और उपजीव्य काव्य भी कहा गया है। आर्ष शब्द ऋषि से बना है। ऋषि का रचा हुआ काव्य आर्ष काव्य है। आचार्य विश्वनाथ ने अपने साहित्य दर्पण में रामायण तथा महाभारत दोनो को आर्ष काव्य के रूप में परिभाषित किया है। जो देख सकता है वह ऋषि है। उपजीव्य काव्य का आशय है ऐसे काव्य जिन्होंने बाद में रचे जाने वाले साहित्य को व्यापक रूप से प्रेरित, प्रभावित या अनुप्राणित किया। अनेक महाकाव्यों और नाटकों पर प्रत्यक्ष रूप से रामायण या महाभारत का प्रभाव है। साथ ही महाकाव्य के मानदंड और संरचना की अवधारणाएँ भी इन्हीं दोनो उपजीव्य काव्यों के आधार पर निर्मित हुईं। परवर्ती काव्य रचना के विभिन्न तत्त्व रामायण तथा महाभारत से ही पल्लवित हुए।

11.4 भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद की आवश्यकता

कालजयी साहित्य किसी भी देश या जाति की महत्त्वपूर्ण विरासत होता है। उसे बचा कर रखना समाज और देश के नागरिकों का दायित्व है। कालजयी साहित्य का बचाव या सुरक्षा हम अनुवादों के माध्यम से भी कर सकते हैं। यदि मूल भाषा, जिसमें कोई कालजयी रचना लिखी गई है, प्रचलन से बाहर हो गई है, तो ऐसी कालजयी कृति के अनुवाद की आवश्यकता और महत्त्व और बढ़ जाते हैं। विलियम जोन्स ने महाकवि कालिदास के नाटक

अभिज्ञानशाकुंतल का अनुवाद अंग्रेजी में किया था। इस अंग्रेजी अनुवाद का भी अनुवाद फोस्टर ने किया जिसे पढ़कर महाकवि गेटे मुग्ध हो उठे। वास्तव में, केवल अभिज्ञानशाकुंतल के एक अनुवाद के प्रकाशन ने विश्व में भारत की छवि उज्ज्वल बनाई और भारतीयजन में राष्ट्रीय स्वाभिमान जगाने में मदद की।

किसी भी क्लासिक अर्थात कालजयी रचना का एक अनुवाद कभी पर्याप्त नहीं होता। ऐसा दो कारणों से होता है। एक कालजयी कृति के अभिप्रायों का दायरा इतना बड़ा होता है कि उसे अन्य भाषा के एक अनुवाद में समेटना असंभव हो जाता है। दो अनुवाद की भाषा एक सीमित देश-काल में प्रासंगिक होती है। समय के बदलाव के साथ नई पीढ़ी पुराने अर्थ के साथ उसका अपनी समझ के अनुसार अर्थ निर्धारण भी करती है। इसीलिए कहा जाता हैं कि हर नई पीढ़ी को अपने लिए स्वयं अनुवाद करना चाहिए।

11.5 भारतीय कालजयी साहित्य के विभिन्न प्रकार

साहित्य दो प्रकार का होता है - विचार प्रधान साहित्य और ललित साहित्य। विचार प्रधान साहित्य के अंतर्गत दार्शनिक या शास्त्रीय चिन्तन प्रस्तुत करने वाली कृतियां आती हैं। ललित साहित्य के अंतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास आदि रचनाएं आती हैं। रचना शैली की दृष्टि से कालजयी साहित्य दो प्रकार का हो सकता है वस्तुनिष्ठ (objective) और विषयीनिष्ठ (subjective)। प्रबन्धात्मक रचनाएँ वस्तुनिष्ठ होती हैं। विषयी या एक व्यक्ति की भावनाओं को प्रकट करने वाली रचनाएं विषयीनिष्ठ होती हैं। भारतीय कालजयी साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास महाकाव्य आदि विधाएं आती हैं। महाकाव्य श्रव्य काव्य की विधाओं में सबसे प्रमुख माना गया है। महाकाव्य शब्द महत् और काव्य इन दो शब्दों को मिला कर बना है। महत् का अर्थ महान् या बड़ा है। इस विशेषण से ही इस काव्यप्रकार की प्रधानता प्रकट होती है। 'महत्-काव्य' - इस संज्ञा का प्रयोग सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण में मिलता है। वहाँ वाल्मीकि रामायण को महत्-काव्य कहा गया है। काव्यशास्त्र के आचार्यों की परम्परा में सर्वप्रथम गण्य भामह ने महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है यह आकार में बड़ा (महत्) तथा महान् लोगों के चरित्र का निरूपण करने वाला काव्य है। इसमें मंत्र (परामर्श, मंत्रणा), दूत, युद्ध का वर्णन होता है तथा नायक का अभ्युदय दिखाया जाता है। महाकाव्य ग्राम्य शब्दों से रहित, अर्थसौष्ठव से युक्त, अलंकार से युक्त तथा सत्पुरुषों के चरित्र को प्रस्तुत करने वाला होना चाहिए। इसमें चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) का प्रतिपादन होना चाहिये। लोकस्वभाव तथा सभी रसों का इसमें निरूपण होना चाहिए।

11.6 भारतीय कालजयी साहित्य : एक परिचय

यहां हम प्राचीन भारतीय कालजयी साहित्य की कुछ प्रमुख रचनाओं की चर्चा करेंगे। कालजयी साहित्य को उपजीव्य काव्य भी कहा जाता है। कालान्तर में इन्हीं रचनाओं को आधार बनाकर प्रचुर मात्रा में साहित्य का सृजन हुआ है।

रामायण : परिचय

वाल्मीकि रामायण के सात कांडो के नाम हैं- बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किश्किंधाकांड, सुंदरकांड, युद्धकांड तथा उत्तरकांड। प्रत्येक कांड कई सर्गों में विभाजित है। बालकांड में राम के जन्म से विवाह तक की कथा है। अयोध्याकांड में राम के वनवास का वृत्तांत है। अरण्यकांड में दंडकारण्य में राम, सीता और लक्ष्मण का निवास, शूर्पणखाप्रसंग, खर-दूषण आदि का वध, सीता का अपहरण तथा राम का विलाप ये घटनाएँ चित्रित हैं। किष्किंधाकांड में राम-सुग्रीव का मिलन, बालिवध तथा हनुमान आदि का सीता की खोज में जाना वर्णित है। सुंदरकांड में हनुमान का लंका में पंहुचना और सीता से उनकी भेंट तथा लंकादहन का वर्णन है। युद्धकांड में राम और रावण की सेनाओं के बीच युद्ध का विस्तृत वर्णन है, जो रावण के वध के साथ समाप्त होता है। उत्तरकांड में रामराज्य के वर्णन के साथ अनेक आख्यान संग्रहीत हैं।

रामायण का आदर्श तथा संदेश

वाल्मीकि राम, हनुमान, भरत जैसे महान् चरित्रों द्वारा यह बताते हैं कि इन बुराइयों से कैसे बचा जाए। राजाओं और क्षत्रिय समाज की विलासिता का यथार्थ चित्रण उन्होंने दशरथ, सुग्रीव और रावण के अंतःपुर के वर्णन में किया

है। वृद्ध राजा दशरथ की अपनी युवतीरानी कैकेयी को रिझाने की चेष्टाएँ विडंबनापूर्ण लगती हैं। दशरथ की कामुकता के प्रति वाल्मीकि ने अपनी अरुचि प्रकट की है। किष्किंधाकांड में सुग्रीव की विलासिता के चित्रण के साथ शासकवर्ग की आत्मरति और आत्मविस्मृति की तीखी भर्त्सना है। रावण का तो चरित्र ही शासक की निरंकुशता और ऐश्वर्य के मद का साकार रूप है। सामंतीय समाज के इस प्रकार के अधःपतन की प्रतिक्रिया में वाल्मीकि ने राम जैसे महान् मर्यादापुरुषोत्तम का चरित्र उपस्थित किया। रामायण जीवन में सतत सत्कर्म की प्रेरणा देता है। मनुष्यों को अपने ऊपर आने वाले संकट और दुःख को सहज भाव से स्वीकार करना चाहिए क्योंकि ये संकट और दुःख सदा रहने वाले नहीं हैं। उनके कारण कर्म से विरत हो कर संसार का त्याग करने का विचार नहीं करना चाहिए। राम ने अपने जीवन में कितने दुःख सहे। रामायण के सारे पात्र जीवन में हताशा और अनास्था के क्षणों से उबर कर सत्संकल्प और कर्म का वरण करते हैं। महाभारत में तो कहा ही गया है कि यह आख्यान (महाभारत) सारे कवियों के लिए उपजीव्य होगा तथा इसे लोग विभिन्न प्रकार से कहते या लिखते रहेंगे-

इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः।।

रामायण और महाभारत की उपजीव्यता

संस्कृत का कोई भी ऐसा महाकवि नहीं है, जिस पर किसी न किसी रूप में रामायण तथा महाभारत का प्रभाव न हो। कालिदास के रघुवंश पर वाल्मीकि के कृतित्व की छाया है। मेघदूत की अनेक मनोहर कल्पनाओ के मूल में वाल्मीकि रामायण है। दूसरी ओर कालिदास का अभिज्ञानशाकुंतल महाभारत के शकुंतलोपाख्यान पर आधारित है। भास के प्रतिमा और अभिषेक, दिङ्नाग की कुंदमाला, भवभूति के महावीरचरित तथा उत्तररामचरित मुरारि का अनर्राघराघव, शक्तिभद्र का आश्चर्यचूडामणि, राजशेखर का बालरामायण, विरूपाक्ष का उन्मत्तराघव, वामनभट्टबाण का रघुनाथचरित, जयदेव का प्रसन्नराघव, राजचूडामणि दीक्षित का आनंदराघव आदि नाटक रामायण की कथा को प्रस्तुत करते हैं। महाकवि प्रवरसेन का प्राकृतभाषा में लिखा महाकाव्य सेतुबंध, कुमारदास का महाकाव्य जानकीहरण, भट्टि का महाकाव्य, आदि अनेक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य या नाटक रामायण से प्रेरित हैं। चंपू काव्यों में भोज का रामायणचंपू, वेंकटाध्वरि का उत्तरचंपू आदि चंपूकाव्य की रामायण पर ही आधारित हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में महाकवि क्षेमेंद्र ने अपनी रामायणमंजरी तथा भारतमंजरी में रामायण और महाभारत का सार प्रस्तुत किया। भास के छह रूपक महाभारत की कथा के विभिन्न प्रसंगों को प्रस्तुत करते हैं। भारवि का किरातार्जुनीय, भट्टनारायण का वेणीसंहार तथा राजशेखर का बालभारत आदि अनेक महाकाव्य और नाटक महाभारत से प्रेरित हैं।

वास्तव में तो रामकथा या महाभारतकथा को ले कर जितना साहित्य भारत में लिखा गया, केवल उसी के लिए मूल स्रोत नहीं, अपितु संस्कृत में जितना भी काव्य साहित्य रचा गया है, उस सबका ही प्रकारांतर से मूल स्रोत रामायण और महाभारत ये दो महनीय ग्रंथ रहे हैं, क्योंकि वैदिक छंदों के पश्चात् लौकिक छंदों का स्वरूप इन्हीं दोनों में स्पष्ट सामने आया, महाकाव्य या सर्गबंध की अवधारणा भी इन्हीं में प्रकट हुई, तथा रस और अलंकार के मानदंड भी इनसे स्थापित हुए। केवल संस्कृत साहित्य पर ही नहीं, सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य पर रामायण और महाभारत का गहरा व दूरगामी प्रभाव है।

ऊपर कहा गया है कि कालजयी रचनाएं परम्परा बनाती हैं। तमिल भाषा में वाल्मीकि रामायण से प्रेरणा लेकर कम्बन रामायण की रचना हुई। कम्बन रामायण साढे दस हजार पद्यों का एक विशाल ग्रंथ है। यह छः खंडों में विभाजित है।

तेलुगु भाषा में महाभारत का अनुवाद नन्नय कवि ने किया। नन्नय का समय दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी है। 15वीं शताब्दी में कवि मोल्ला ने मोल्लरामायणु नाम से वाल्मीकि रामायण का स्वतन्त्र और संक्षिप्त रूपांतर तेलुगु में प्रस्तुत किया। नेपाली भाषा में आदिकवि भानुभक्त (जन्म 1914 ई.) की वाल्मीकि रामायण पर आधारित रचना सातकाण्ड रामायण अपनी मौलिकता के कारण जानी जाती है। बांग्ला भाषा में पन्द्रहवीं शताब्दी में कृत्तिवास ओझा ने कृत्तिवास रामायण की रचना की। निराला के सुप्रसिद्ध काव्य कृत्तिवासीय रामायण पर इसका प्रभाव पड़ा है। कृत्तिवास ने अपनी रामायण को बांग्ला भाषा और उसके परिवेश में ढाल कर अनूठा रूप दिया है। मलयालम भाषा

के उपलब्ध काव्यों में सबसे प्राचीन रचना 'रामचरितम्' है। इसका रचनाकाल बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी के आसपास है। रामचरितम् के बाद मलयालम साहित्य में रामायण पर आधारित काव्यों में 'रामकथापाट्टु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मलयालम् में तुंचत्तु रामानुजन् एशुत्तच्छन् युगप्रवर्तक साहित्यकार हैं। इनकी दो कृतियाँ अध्यात्मक रामायणम् और महाभारतम् इनकी अजर अमर कीर्ति के स्तम्भ हैं। असम में राजा दुर्लभ नारायण (1330-1350 ई.) के दरबारी कवि थे होम सरस्वती। इन्होंने प्रह्लादचरित्र लिखा। दूसरे कवि हरिहर विप्र की तीन रचनाएँ मिलती हैं लवकुशर युद्ध, बभ्रुवाहनर युद्ध, ताम्रध्वजर युद्ध। दुर्लभ नारायण के पुत्र इन्द्रनारायण के संरक्षण में कविरत्न सरस्वती ने जयद्रथवध काव्य की रचना की। यह भी महाभारत पर आधारित है। महाभारत में अर्जुन द्वारा जयद्रथवध की प्रतिज्ञा का प्रसंग है। वही प्रसंग इस रचना में है। मैथिलीशरण गुप्त का जयद्रथवध काव्य भी इसी प्रसंग पर आधारित है। ओड़िया भाषा में पंद्रहवीं शताब्दी के कवि अर्जुनदास का रामविभा कालजयी रचना का अच्छा नमूना है। परन्तु ओड़िया में रामायण और महाभारत को आधार बना कर महान् रचनाएं प्रस्तुत करने वाले श्रेष्ठ कालजयी रचनाकार सरलादास हैं। इनका समय भी पंद्रहवीं शताब्दी है। इनका महाभारत ओड़िया साहित्य में युगांतकारी रचना सिद्ध हुआ। विलंका रामायण सरलादास की दूसरी कृति है। पंप कन्नड के आदिकवि हैं। इनका पंपभारत महाभारत पर आधारित होते हुए भी अपने आश्रयदाता अरिकेसरी द्वितीय के चरित्र का भी ओजस्वी व प्रभावशाली चित्रण है। महाकवि पोन्न का पंप के बाद कन्नड साहित्य में दूसरा स्थान है। इन्होंने रामकथामहाकाव्य लिखा। कश्मीरी भाषा में रामावतारचरित नाम से रामायण का लोकप्रिय संस्करण है।

कालिदास

रामायण और महाभारत के बाद संस्कृत के कालजयी रचनाकारों में कालिदास अग्रगण्य हैं। कालिदास के रचे सात काव्य प्रसिद्ध हैं। इनमें से दो महाकाव्य हैं रघुवंश और कुमारसंभव। दो खंडकाव्य या गीतिकाव्य हैं मेघदूत तथा ऋतुसंहार। तीन रूपक हैं – अभिज्ञानशाकुंतल, विक्रमोर्वशीय तथा मालविकाग्निमित्र।

मेघदूत : परिचय

कालिदास ने प्रत्येक कृति में नवीन मानदंड स्थापित किए हैं। यदि ऋतुसंहार में उन्होंने देश की धरती की ऋतुओं के आवर्तन-विवर्तन के साथ परिवर्तित होती छवि को उकेरने वाला पहला काव्य प्रस्तुत किया। मेघदूत द्वारा उन्होंने ऐसी अनूठी कृति रची जिससे संदेशकाव्य या दूतकाव्य की एक अत्यंत समृद्ध परम्परा का जन्म हुआ। लगभग सौ श्लोकों की एक छोटी सी रचना एक सुदीर्घ काव्य परम्परा की प्रवर्तक या उपजीव्य बन जाए, ऐसा विश्वसाहित्य में कम ही हुआ है। मेघदूत की विषय वस्तु इस प्रकार है एक यक्ष था। एक बार वह जो अपने कर्तव्य में असावधानी कर बैठा। इसके कारण उसे उसके स्वामी कुबेर ने एक वर्ष के लिए देश से निर्वासित कर दिया। तब यक्ष ने रामगिरि के आश्रमों में डेरा डाला। रामगिरि पर रहते रहते उस ने आठ महीने बिता दिये। आषाढ मास के पहले दिन एक बादल उसे रामगिरि पहाड़ पर टिका हुआ दिखा। इतने महीनों से एकाकी रहते रहते विरह में उसकी मनःस्थिति विपर्यस्त थी। उसके मन में यह बात आई कि यह मेघ मेरी प्रिया तक मेरा संदेश ले जा सकता है। बस, उसने मेघ से अपना संदेश अलका नगरी ले जाने का अनुरोध करते हुए अपने विषय में, अपनी प्रिया के विषय में बताना आरंभ कर दिया। यक्ष के उद्गारों में ही सारा काव्य समाप्त हो जाता है। यक्ष रामगिरि से अलका तक का मार्ग मेघ को बताता है, जिसमें सारे देश का सांस्कृतिक वैभव तथा नैसर्गिक सौंदर्य विरह की आकुल अभिव्यक्ति में समेट लिया गया है। उत्तरमेघ में यक्ष अपनी नगरी अलका का वर्णन करते हुए अपने घर का पता बताता है फिर अनुमान करता है कि उसकी प्रिया यक्षिणी घर में क्या क्या कर रही होगी। फिर वह यक्षिणी को सुनाने के लिए जो संदेश मेघ को बताता है उसमें अपनी व्यथा, प्रेम और रसिकता को उड़ेल कर रख देता है। विरह की तीव्र व्यथा और मिलन की आकांक्षा तथा आशा का चित्रण मेघदूत में पराकाष्ठा पर है। जैसे जैसे मिलन का समय निकट आता जाता है, विरह की उत्कंठा बढ़ती जाती है। यक्ष अपनी प्रिया के विषय में विभिन्न प्रकार की कल्पनाएं करता हुआ मेघ को बताता है कि उसके वियोग में खिन्न वह क्या क्या कर रही होगी। नीचे लिखे उदाहरण ध्यान से पढ़ कर आप मेघदूत के भावसंसार को समझ सकते हैं:

आलोके ते निपतति पुरा सा बलि व्याकुला वा मद्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति।। (उत्तरमेघ, 11)

(वह तुम्हें पूजा में व्यस्त दिखायी देगी। या मेरे विरह में कृशकाय मेरा चित्र अपने भाव से बूझ कर बनाती मिलेगी। या फिर मधुर वचन वाली पिंजरे में बंद मैना से पूछती दिखेगी कि रसिके, तुझे अपने स्वामी की स्मृति आती है या नहीं, तू तो उनको बड़ी प्रिय थी?) यक्षिणी को भेजे अपने संदेश में यक्ष ने अपनी मनोव्यथा, चिंता, कातरता, और प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। उसके दैनिंदिन जीवन के छोटे छोटे घटना-प्रसंग मन के तारों को झिंझोड़ देते हैं। *त्वामालिख्यप्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया - मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्। अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैद दृष्टिरालुप्यते मे क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्.गमं नौ कृतान्तः।* (उत्तरमेघ, 38)

(मैं शिला पर धातुराग (गेरू) द्वारा तुम्हारा चित्र बना कर उस चित्र में तुम्हारे पांवो पर गिरा हुआ अपने आपको भी बनाना चाहता हूं, तब तक उमड़ते आंसुओ से मेरी दृष्टि ही लुप्त हो जाती है। क्रूर विधाता को उस चित्र में भी हमारा मिलन सहन नहीं है।)

कालिदास की शैली व्यंजनाप्रधान अर्थात् गागर में सागर भरने की है। वे एक एक शब्द में अगणित भावों की कड़ियां गूंथ देते हैं। रामगिरि पर रहते हुए यक्ष ने आठ महीने कैसे बिताए इस बात को कवि ने एक शब्द से ही प्रकट कर दिया है-*'कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः'*- सोने का कंगन गिर जाने से सूनी कलाई वाला यक्ष। आशय यह कि यक्ष इस तरह बावला हो गया था कि उसकी कलाई से सोने का कंगन पता नहीं कब कहां गिर पड़ा। उसकी कलाई छूंछी की छूंछी रह गई। विरही स्त्रियां मेघ को आशा भरी दृष्टि से निहारती हैं। इस वर्णन में पथिकवनिताओ के लिए कवि ने एक विशेषण दिया है- *'उद्गृहीतालकान्ताः'*-घुंघराले केशों की लटें हाथो से ऊपर कर कर के सरकाती हुईं। इस एक शब्द से कवि ने उन स्त्रियों की सारी दशा व्यक्त कर दी है। विरहिणी स्त्रियां केश नहीं संवारती हैं। केश बिखरे होने से बार बार उड़ कर आंखों के आगे आ जाते हैं, अतः वे लटें ऊपर सरकाती हैं। कालिदास के पहले ऐसा कोई काव्य रचा ही नहीं गया था जिसमें कवि कोई कथा नहीं कहता, पात्र के मन की परते उधेड़ता हुआ मनुष्य के स्वप्न, आकांक्षा और मनोलोक का चित्रण करता हैं। इसके साथ ही कवि ने इसमें यक्ष की उक्तियो में बाहर के विश्व को भी समेट लिया है। अंतःप्रकृति या मानव मन तथा बाह्य प्रकृति या जगत् का ऐसा दुर्लभ समागम भी अन्यत्र नहीं मिलता। तीर्थों और रामगिरि, विंध्य, हिमालय जैसे पर्वतों की अभिरामता, गंगा, चर्मण्वती, वेत्रवती, नर्मदा जैसी नदियों की सुषमा, दशपुर (मंदसौर), विदिशा, उज्जयिनी, हरिद्वार, कनखल आदि स्थानों की विशिष्टताएं ये सब मेघदूत में साकार कर दी गई हैं। सांस्कृतिक बोध तथा आध्यात्मिक भावना मेघदूत के भीतर उतनी ही पिरोई हुई है, जितनी इसमें शृंगार और रागात्मकता है। मेघदूत मनुष्य के अनंत स्वप्न, जिजीविषा और प्रेम की अनन्य निष्ठा का काव्य भी है। मेघदूत में कालिदास ने यह दिखा दिया है कि सच्चा मनुष्य कभी हारता नहीं है, और सच्चा प्रेम कभी मरता नहीं है। मेघदूत का यह सूत्र वाक्य कहा जा सकता है- *स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्तेत्वभोगा- दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।।* (कुछ लोग कहते हैं कि स्नेह विरह में चुक जाता है। पर वास्तव में तो विरह में अपने प्रिय का ध्यान करते करते प्रेमी के भीतर प्रेम का रस और बढता रहता है और प्रेम राशि राशि संचित होता चला जाता है।) विश्व की कोई भी ऐसी प्रमुख भाषा नहीं है, जिसमें इस अनुपम रचना का अनुवाद न हुआ हो। हिन्दी आदि भाषाओ में तो मेघदूत के पचास से अधिक अनुवाद अब किए जा चुके हैं।

कुमारसंभव : परिचय

कुमारसंभव महाकाव्य में शिवपार्वती के विवाह की कथा है। इसके प्रथम सर्ग में हिमालय की भव्यता, पावन सौंदर्य और नैसर्गिक रमणीयता का 15 पद्यों में मनोहारी चित्रण है। उसके पश्चात् हिमालय का मैना से विवाह, उनसे मैनाक नामक पर्वत की उत्पत्ति और फिर पार्वती के जन्म, बाल्यावस्था तथा यौवन और सौंदर्य का वर्णन है। इसी सर्ग में नारद हिमालय से मिलने आते हैं। वे भविष्यवाणी करते हैं कि पार्वती का विवाह शिव से होगा। तब से पार्वती कैलाश पर्वत पर तपस्या कर रहे शिव की पूजा करने के लिए प्रतिदिन जाने लगती है। दूसरे सर्ग में ब्रह्मा के वरदान से अजेय बन चुके तारकासुर से संत्रस्त देवता ब्रह्मा के पास उससे त्रण पाने के लिए जाते हैं। ब्रह्मा उन्हें बतलाते हैं कि शिव का विवाह पार्वती से होने पर उनकी जो संतान होगी, वही तारकासुर का वध करेगी। तब शिव की समाधि भंग करने के लिए इंद्र कामदेव को भेजते हैं। तीसरे सर्ग में कामदेव की लीलाओं के विस्तार और वसंत ऋतु के अवतरण का सरस वर्णन है। कामदेव जब शिव के आगे पहुँचता है, तो उनके प्रभाव के आगे वह हतप्रभ और किंकर्तव्यविमूढ हो कर रह जाता है। तभी पार्वती प्रतिदिन की भाँति शिव की पूजा करने वहाँ

आती है। पार्वती के अपूर्व लावण्य को देख कर कामदेव का साहस लौट आता है, और वह सोचता है कि ऐसी अनिंद्य सुंदरी के सामने होने पर तो अवश्य ही वह शिव का तपोभंग कर सकेगा। शिव प्रतिदिन की भाँति पार्वती की पूजा स्वीकार करते हैं, और इसी समय उचित अवसर समझ कर पास ही आम के वृक्ष की शाखा पर छिपा हुआ कामदेव अपने फूलों के धनुष पर बाण खींचता है। शिव को अपने चित्त में कुछ हलचल का अनुभव होता है और तभी उनकी दृष्टि कामदेव पर पड़ जाती है। जब तक आकाश में देवता लोग चिल्ला कर यह कह पाते कि प्रभु अपने क्रोध को रोकिये, शिव के तीसरे नेत्र से निकली अग्नि से भस्म हो कर कामदेव राख हो चुकता है। चतुर्थ सर्ग में कामदेव की राख के सम्मुख उसकी पत्नी रति के विलाप का वर्णन है। पाँचवे सर्ग में पार्वती तपस्या करने का निश्चय करती है क्योंकि अपने देखते देखते कामदेव को भस्म में परिवर्तित पा कर वह समझ गई है कि शिव को रूप से नहीं रिझाया जा सकता। माता मैना उससे तपस्या के लिए घर का त्याग न करने का अनुरोध करती है। पर पार्वती पिता की आज्ञा लेकर वन में चली जाती है और कठोर तप करना आरंभ कर देती है। पार्वती की घनघोर तपस्या से प्रभावित होकर शंकर एक ब्रह्मचारी का वेश बना कर उसकी परीक्षा लेने के लिए आते हैं। वे पार्वती के सामने शंकर की निंदा करते हैं। पार्वती उन्हें झिड़क देती है। तब शंकर अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो कर उसका हाथ पकड़ लेते हैं और कहते हैं कि आज से मैं तुम्हारे तप से खरीदा गया तुम्हारा दास हूँ। तब पार्वती उन्हें विवाह के लिए पिता से बात करने का अनुरोध करती है। षष्ठ सर्ग में सप्तर्षियों का हिमालय जाकर राजा हिमालय से शिव के साथ पार्वती के विवाह की चर्चा करने का प्रसंग है और सप्तम सर्ग में विवाह का अत्यंत चित्ताकर्षक वर्णन है। अष्टम सर्ग में शिव और पार्वती की प्रणयक्रीड़ाओं के वर्णन के साथ महाकाव्य समाप्त होता है। कुमारसंभव नायिकाप्रधान महाकाव्य है। इसमें आद्यंत पार्वती का कर्तृत्व छाया हुआ है। वे ही शिव को पाने के लिए उनकी आराधना करती हैं, और अपने रूप से उन्हें रिझाना भी चाहती हैं। जब उन्हें अनुभव होता है कि शिव बाहरी सौंदर्य पर नहीं रीझते, वे चित्त की निष्ठा और साधना देखते हैं, तो वे शिव को पाने के लिए घोर तप करती हैं। कुमारसंभव में संवादों की भाषा अत्यंत हृदयावर्जक है। विशेष रूप से पंचम सर्ग में ब्रह्मचारी बटु (छद्मवेशधारी शिव) तथा पार्वती का संवाद तो उक्ति-प्रत्युक्ति के पैनेपन के कारण अत्यंत मनोरंजक है, तो तीसरे सर्ग में इंद्र और कामदेव के संवाद में काम निकालने के लिए स्वामी अपने सेवक से भी किन शब्दों में वार्तालाप करता है और सेवक उसकी प्रशंसा से फूल कर कुप्पा हो कर क्या क्या कह जाता है, इसका रोचक बानगी कवि ने दी है। समाधिस्थ शिव का वर्णन कवि की अध्यात्मदृष्टि उदात्तबोध का उज्ज्वल उदाहरण है:

पर्यङ्.कबन्धस्थिरपूर्वकायमृज्वायतं सन्नमितोभयांसम्।
उत्तानपाणिद्वयसन्निवेशात् प्रफुल्लराजीवमिवाङ्.कमध्ये।।

(शंकर पालथी लगा कर बैठे हुए थे। उनका शरीर एकदम स्थिर, सीधा था। गोद में उन्होंने अपनी दोनों हथेलियाँ एक के ऊपर दूसरी उल्टा कर रख ली थीं, जिससे ऐसा लगता था जैसे उनकी गोद में कमल खिला हुआ हो) यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग शंकर की गरिमा के अनुरूप हुआ है।

अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहमपामिवाधारमनुत्तरङ्.गम्।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधान्निवातनिष्कम्पमिव प्रदीपम्।।

(जैसे बादल वर्षा के थमने पर स्थिर रह गये हो, जैसे हवा के रुक जाने पर सरोवर में कोई लहर न उठ रही हो, उसी तरह भीतर के मरुद्गणो के निरोध के कारण शंकर निवात (जहाँ हवा नें बह रही हो ऐसे) स्थान में रखे दीपक की तरह थे। यहाँ भी शंकर के लिए कवि ने तीन उपमाओं का प्रयोग किया है, जो शिव की समाधिस्थ दशा के वर्णन में सर्वथा उपयुक्त हैं। कुमारसंभव के प्रकृतिवर्णन सृष्टि की अनुपम कमनीयता ओर अपार वैभव को सामने लाते हैं। पहले सर्ग में हिमालय का वर्णन इस क्षेत्र के सारे पर्यावरण को साकार कर देता है। हिमालय की कंदराओं में रात्रि को जलती औषधियाँ (जड़ी बूटियां), सरल, भोज और देवदारु के उन्नत वृक्ष, भागीरथी के झरते हुए झरने, आसपास घूमते किरात इन सबके चित्र कवि ने शब्दों की तूलिका से रमणीय रूप में अंकित कर दिये हैं। आठवां सर्ग तो प्रकृतिनिरूपण की दृष्टि से संस्कृत साहित्य की अनमोल निधि ही है। यहाँ प्रकृति को कवि ने अनंत सौंदर्य से मंडित कर दिया है।

कालिदास की उपमाएँ नई सूझबूझ के साथ वर्ण्यविषय को प्रस्तुत करती हैं। वर्ण्य के अनुरूप उपमान लाने में कवि की प्रतिभा अनोखा चमत्कार दिखाती है। पार्वती की शिक्षा का वर्णन करते हुए कवि कहता है जिस तरह शरद ऋतु में हंसों की पांते गंगा के किनारे आती हैं, जिस तरह औषधियाँ रात के समय स्वयं चमक उठतती हैं, उसी तरह उपदेश (शिक्षा) में स्थिर मन वाली उस पार्वती के पास पिछले जन्म में सीखी हुई विद्याएँ स्वयं चली आईं।

तांहंसमालाः शरदीवगङ्.गा महौ धिं नक्तमिवात्मभासः।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः।। (1/30)

यहाँ दोनों उपमाएँ हिमालय के पवित्र वातावरण और पार्वती के उदात्त व्यक्तित्व के अनुरूप हैं। इसके साथ ही कवि का भौगोलिक ज्ञान भी उनमें विलक्षण रूप से प्रतिफलित हुआ है। शरद ऋतु में हंसों का गंगा के किनारे आना और हिमालय के परिवेश में रात के समय जड़ी बूटियों का चमकना – इन तथ्यों का उपमा की लड़ी गूँथने में सुंदर उपयोग किया गया है।

कुमारसंभव में महाकवि ने प्रेम के उज्ज्वल और पावन रूप को प्रतिष्ठित किया है। बाहरी सौंदर्य से शिव को नहीं पाया जा सकता। सच्चा प्रेम तप की अग्नि में ही निखरता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कुमारसंभव में कालिदास के संदेश को स्पष्ट करते हुए कहा 'कुमारसंभव में कवि ने जीवनदर्शन को बहुत बड़ी पटभूमिका पर रख कर व्यक्त करने का प्रयास किया है। त्याग के साथ तपस्या का और ऐश्वर्य के साथ प्रेम का मिलन होने पर ही स्त्री पुरुष का प्रेम धन्य होता है। त्याग और भोग के सामंजस्य से ही जीवन चरितार्थ होता है।' कालिदास ने इस महाकाव्य में यह भी बतलाया है कि शक्ति के बिना शिव अपूर्ण है। संक्षेप में उन्होंने शिव और पार्वती इन दोनों पुराकथा के पात्रों का प्रतीकात्मक रूप भी उन्मीलित किया है।

रघुवंश

रघुवंश महाकाव्य में उन्नीस सर्ग हैं। इसमें दिलीप से आरंभ कर के अग्निवर्ण तक रघुकुल के राजाओं का चरित्र वर्णित है। राजा रघु का चरित्र इसमें अत्यंत प्रभावशाली है। इन्हीं रघु के नाम पर वंश का नाम भी रघुवंश या रघुकुल पड़ा। महाकाव्य का रघुवंश नामकरण भी सार्थक है। क्योंकि दूसरे सर्ग में राजा दिलीप नंदिनी गौ से ऐसा पुत्र मांगते हैं, जो वंश को आगे ले जाने वाला या वंश का नाम बढ़ाने वाला हो। कथावस्तु – पहले सर्ग में दिलीप संतानप्राप्ति का उपाय पूछने अपने गुरु वसिष्ठ के आश्रम जाते हैं। वसिष्ठ उन्हें नंदिनी गाय की सेवा करने का परामर्श देते हैं। द्वितीय सर्ग में दिलीप की गोसेवा, दिलीप की परीक्षा तथा नंदिनी के प्रसन्न होने का वर्णन है। तृतीय सर्ग में रघु का जन्म और चतुर्थ में रघु के राज्याभिषेक के पश्चात् उसकी दिग्विजय का वर्णन है, जिसमें कवि ने सारे भारत के विभिन्न प्रदेशों की मनोरम झाँकी भी दी है। पाँचवे सर्ग में विश्वजित् यज्ञ कर के अपना सर्वस्व दान करने वाले महाराज रघु के त्याग का अत्यंत प्रभावशाली और प्रेरणाप्रद चित्रण हुआ है। इसी सर्ग के अंत में विदर्भ देश के राजा भोज अपनी पुत्री इंदुमती के स्वयंवर के लिए रघु के पास दूत भेजते हैं और रघुपुत्र राजकुमार अज स्वयंवर में भाग लेने के लिए प्रस्थान कर देता है। षष्ठ सर्ग में स्वयंवर का चित्ताकर्षक वर्णन है। इंदुमती अज के कंठ में वरमाला डालती है। सप्तम सर्ग में अज का इंदुमती से विवाह होता है। स्वयंवर में आए अन्य राजा अज से युद्ध छेड़ देते हैं और परास्त होते हैं। अष्टम सर्ग में रघु अज को राज्य सौंप कर वानप्रस्थ हो जाते हैं। इसके आगे नारद की वीणा से गिरी माला के स्पर्श से इंदुमती का निधन तथा अज का अत्यंत कारुणिक विलाप वर्णित है। नवम सर्ग दशरथ के शासन के वर्णन के साथ आरंभ होता है। दशरथ भूल से वन्यगज के भ्रम से श्रवणकुमार की हत्या कर देते हैं और उन्हें पुत्र वियोग में मरने का शाप मिलता है। दशम सर्ग में दशरथ का पुत्रेष्टियज्ञ, रावण से त्रस्त देवताओं की सहायता के लिए विष्णु के पास जाना, विष्णु का दशरथपुत्र के रूप में अवतार ले कर रावण का नाश करने की घोषणा तथा राम आदि का जन्म वर्णित है। ग्यारहवें सर्ग में विश्वामित्र का राम और लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए आश्रम ले जाना, ताटका-खर-दूषणादि का वध, विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण का मिथिला जाना, राम द्वारा शिवधनुष का भंग, राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का विवाह तथा परशुराम का पराभव आदि घटनाएँ वर्णित हैं। बारहवें सर्ग में दशरथ राम के राज्याभिषेक का विचार करते हैं, तभी कैकेयी उनसे वरदान मांगती है। इस सर्ग में राम के वनवास से लेकर शूर्पणखावृत्तांत, सीताहरण, बालिवध, सीतान्वेषण, राम-रावणयुद्ध, रावणवध तक का प्रसंग निरूपित है। बारहवें सर्ग में पुष्पकविमान से अयोध्या लौटते हुए राम सीता को धरती के सुंदर दृश्य दिखाते हैं। भौगोलिक स्थलों के प्रामाणिक वर्णन, सीतावियोग की करुण स्मृतियों के चित्रण और भारतीय वसुंधरा की सुषमा के निरूपण की दृष्टि से यह सर्ग विशेष

रमणीय है। चौदहवें सर्ग में रामराज्याभिषेक के पश्चात् रामराज्य का वर्णन है। इसी सर्ग में राम द्वारा लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग वर्णित है। पंद्रहवें सर्ग में लवणासुर द्वारा सताये गये यमुनातीरवासी मुनि लोग राम से रक्षा का अनुरोध करते हैं। राम के आदेश पर शत्रुघ्न लवणासुर से युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्ग में वाल्मीकि के आश्रम में रात्रिविश्राम के लिए ठहरते हैं। उसी रात्रि में सीता दो पुत्रों को जन्म देती हैं। शत्रुघ्न का लवणासुर से घोर युद्ध होता है। लवणासुर मारा जाता है। शत्रुघ्न यमुनातीर पर मथुरानगरी की स्थापना करते हैं। इधर वाल्मीकि के आश्रम में कुश और लव रामायण के गायन की शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। मथुरा और विदिशा नगरियों के शासन का भार अपने पुत्रों पर छोड़ कर एक बार शत्रुघ्न अपने अग्रज से मिलने के लिए अयोध्या जाते हैं और मार्ग में एक बार फिर वाल्मीकि के आश्रम में रुकते हैं। वहाँ वे कुश और लव के मुख से रामायण का गान सुनते हैं। इसके पश्चात् राम द्वारा शंबूक के वध तथा अश्वमेधयज्ञ के अनुष्ठान का वर्णन है। इसी समय कुश और लव अयोध्या में आते हैं तथा राम अपने पुत्रों के मुख से रामायणगान सुनते हैं। वाल्मीकि सीता की निर्दोषता बताते हुए राम से उसे फिर स्वीकार करने का अनुरोध करते हैं। सीता धरती से प्रार्थना करती है कि वे उन्हें अपने अंक में समेट लें। धरती प्रकट हो कर सीता को अपने अंक में ले कर पाताल चली जाती है। इस सर्ग के अंत में भरत को सिंधुदेश का राजा बनाया जाना और भरत का अपने पुत्रों तक्ष और पुष्कल को वहाँ का शासन सौंप कर अयोध्या लौटना, लक्ष्मण के पुत्रों को कारापथ का शासन सौंपा जाना तथा अंत में राम, लक्ष्मण आदि का महाप्रयाण वर्णित है। सोलहवें सर्ग का आरंभ कुश सहित आठ राघव राजाओं का सारे भारत की वसुंधरा पर शासन के वर्णन से होता है। इस सर्ग में अयोध्या एक रमणी के रूप में कुश को स्वप्न में दर्शन देती है तथा अपना उद्धार करने का आह्वान करती है। कुश अपनी नई राजधानी कुशावती को छोड़ कर राजधानी अयोध्या लौट आते हैं। अयोध्या में निवास करते हुए कुश एक दिन सरयू नदी में जलविहार करते हैं। उनका एक आभूषण जल में गिर जाता है। उसकी खोज करते हुए उनकी भेंट नागराज कुमुद से होती है, और नागराज कुमुद उन्हें अपनी पुत्री कुमद्वती वधू के रूप में सौंप देते हैं। सत्रहवें सर्ग में कुश के पुत्र अतिथि के अत्यंत महनीय व्यक्तित्व और राजकार्यकौशल का प्रभावशाली वर्णन है। अठारहवें सर्ग में अतिथि के पुत्र निशध से लेकर सुदर्शन तक अनेक राजाओं के शासन का वर्णन किया गया है। उन्नीसवें सर्ग में अग्निवर्ण राजा का वृत्तांत है। अग्निवर्ण अत्यधिक विलासिता के कारण क्षय रोग से कालकवलित हो जाता है और मंत्रीगण उसकी गर्भवती रानी को राजसिंहासन पर अभिशक्ति कर देते हैं। स्रोत- दशरथ, राम तथा लव-कुश के चरित्र के निरूपण में कवि कालिदास वाल्मीकि से प्रभावित हैं। वाल्मीकि की शैली और अभिव्यक्ति ने उन्हें अनुप्राणित किया है, इसमें कोई संदेह नहीं। फिर भी दिलीप, रघु, अज तथा अतिथि से लगा कर परवर्ती रघुवंशी राजाओं के वर्णन में वाल्मीकि रामायण के प्रतिपादन से अंतर को देखते हुए विद्वानों का अनुमान है कि कालिदास ने अपनी कथा के लिए वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त वायुपुराण या विष्णुपुराण के प्राचीन रूपों को भी आधार बनाया होगा। वस्तुवैशिष्ट्य-रघुवंश एक महान् और गौरवशाली राजवंश के उत्थान, पतन और उसके माध्यम से भारत राष्ट्र के ऐतिह्य और भवितव्य को चित्रित करने वाल अद्वितीय महाकाव्य है। भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति के बहुविध आयाम रघुवंश की विषयवस्तुमालिका में उज्ज्वल मुक्तामणियों की भाँति गुंथ गए हैं। दशम सर्ग में देवों द्वारा विष्णु की स्तुति में दार्शनिक तत्त्वों की काव्यात्मक शैली में सहज अभिव्यक्ति हो गई है। अग्निवर्ण जैसे कामुक और विलासी राजा का चित्रण कर के कवि ने यह दिखाया है कि ऐसे महान् वंश में भी अधःपतन और स्खलन हो सकता है। पर अग्निवर्ण के साथ रघुवंश समाप्त नहीं हो जाता। कालिदास ने नवोत्थान और आशावाद के भाव के साथ अपने महाकाव्य की प्रतीकात्मक रूप में अत्यंत महिमामय परिणति प्रस्तुत की है। अंतिम पंक्ति है :

राज्ञी राज्यं विधिवददशिषद् भर्तुरव्याहताज्ञा।

- राजा अग्निवर्ण की रानी अपने पति के राज्य पर अव्याहत (न टाली जा सकने वाली) आज्ञा वाली हो कर विधिवत् शासन करती रही। इस महाकाव्य में पहले छह राजाओं का चरित्र अत्यंत विषद रूप से निरूपित है। बाद में कथा के प्रवाह को तीव्र गति देते हुए कवि ने रामायण की सारी कथा चार सर्गों में ही समेट ली है। अठारहवें सर्ग में तो अनेक राजाओं का चरित्र एक एक या दो दो श्लोकों में बता कर वंशपरम्परा का इतिहास काव्यात्मक रूप में निबद्ध कर दिया है। पहले सर्ग में आश्रम का वर्णन बड़ा ही प्रेरणाप्रद है, जो प्राचीन भारत के ऋषियों के तपोवनों का जीता जागता चित्र उपस्थित कर देता है। कालिदास का मन आश्रमों के वर्णन में विशेष रमा है। आश्रम के चित्रण में वे हमारे सांस्कृतिक वैभव और जीवन के आदर्शों को साकार कर देते हैं। आश्रम की इस

संस्कृति के आगे उन्होंने राजसत्ता को बार-बार नतमस्तक करवाया है। दूसरे सर्ग में दिलीप की गो-सेवा तथा हिमालय के आसपास के वन की सुषमा का हृदयग्राही वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में रघु की दिग्विजय के ब्याज से कवि ने सारे भारत की सुषमा का अत्यंत मनोहारी चित्रण कर दिया है। छठे और बारहवें सर्गों में युद्ध के वर्णन बड़े ओजस्वी हैं। नवम सर्ग में मृगया का वर्णन अतिशय रोचक है। इसी प्रकार षष्ठ सर्ग में स्वयंवर और सप्तम में अज और इंदुमती के विवाह का वर्णन वैवाहिक विधान का प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत करता है। विवाह के पश्चात् वर रूप में अज को देखने के लिए विदर्भ की स्त्रियों की हड़बड़ी का चित्रण हास्य की अपूर्व सृष्टि करता है, तथा यह कवि के सूक्ष्म पर्यवेक्षण और शब्दचित्र अंकित करने की निपुणता का भी परिचायक है। कालिदास अपने वर्णनों में पग-पग पर अत्यंत सटीक उपमाएं गूँथते चलते हैं। उपमाओं में नवीन कल्पना से वे हमें चमत्कृत कर देते हैं और वर्ण्य विषय को आंखों के आगे साकार भी कर देते हैं। अज से स्वयंवर के प्रसंग में वरमाला हाथ में लिए हुए स्वयंवरा इंदुमती एक एक राजा के आगे से निकलती है। राजा का मुख स्वयंवरा को सामने देख कर आशा से चमक उठता है, और जब इंदुमती उसके कंठ में वरमाला डाले बिना आगे से निकल जाती है, तो वही मुख निराशा से बुझा बुझा हो जाता है। इस स्थिति का वर्णन करते हुए कवि ने चलती हुई दीपशिखा से इंदुमती को उपमित किया है। जैसे संचारिणी दीपशिखा रात्रि के समय राजपथ पर चल रही हो और उसके सामने आने पर तो मार्ग के अट्ट उद्भासित हो उठें और उसके निकल जाने पर फिर अँधेरे में डूब जाएं

संचारिणी दीपशिखेव रात्रै यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स सभूमिपालः।। (6/67)

चरित्रचित्रण कालिदास मनुष्य को उसकी समग्र गरिमा और परिपूर्णता के साथ प्रस्तुत करते हैं। रघुवंश के सारे पात्र अपना विशिष्ट व्यक्तित्व रखते हैं। दिलीप अपनी उदारता, त्याग और सहज मनोविनोदी स्वभाव के कारण हमारे हृदय में घर कर लेते हैं तो रघु अपनी शूरता तथा राष्ट्र को एकच्छत्र सबल आधार देने वाले महान् पराक्रम के कारण प्रभावित करते हैं। राम का चरित्र सारे महाकाव्य में केन्द्रीय तथा सर्वातिशायी है। अतिथि की नीतिनिपुणता का चित्रण भी प्रेरणाप्रद है। रस –रघुवंश का अंगी रस वीर है। वीर रस के दान, दया, धर्म तथा युद्ध ये चारों रूप रघुवंश में प्रतिफलित हुए हैं। इन चारों प्रकारों में भी वस्तुतः धर्मवीर का अत्यंत उज्ज्वल व प्रभावशाली रूप पूरे महाकाव्य में व्यक्त हुआ है। कवि ने दिलीप, रघु, राम, अतिथि आदि अनेक राजाओं को चरित्र और कृतित्व के ऊर्जस्वी चित्रण में इन आदर्शों को साकार कर के धर्मवीर को अपने काव्य में सर्वोपरि प्रतिष्ठा दी है। दिलीप के लिए उसका यह कथन प्रभावशाली है

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्त्रगुणमुत्स्त्र ुमादत्ते हि रसं रविः।।

(वह राजा प्रजाओं के कल्याण के लिए ही उनसे शुल्क लेता था, जिस प्रकार सूर्य हजार गुना विसर्जित करने के लिए ही धरती से जल सोखता है।) राजा दिलीप के नंदिनी गाय की रक्षा के लिए अपने शरीर को अर्पित करने के उद्यम में दयावीर की प्रभावशाली प्रस्तुति है। रघु का विश्वजित् यज्ञ में निःशेष संपदा दान करना और कौत्स नामक ब्रह्मचारी को कुबेर से प्राप्त सारी स्वर्णराशि देने का आग्रह दानवीर का अप्रतिम रूप सामने रखता है, जिसमें-

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतावभिनन्द्यसत्त्वौ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःसृपहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च।।

(साकेत या अयोध्या के लोगों के लिए उन दोनों की ही क्षमता अभिनंदनीय बन गयी थी – अर्थी ब्रह्मचारी अपने गुरु को दक्षिणा में जितनी राशि देनी थी, उससे अधिक नहीं लेना चाहता था और राजा याचक की कामना से अधिक देने का आग्रह कर रहा था।) रघु की दिग्विजय, राम-परुराम का संघर्ष तथा रावणविजय के प्रसंगों में युद्धवीर का अच्छा परिपाक हुआ है। कालिदास वीर रस के प्रसंगों में चित्त को दीप्त करने वाली तथा उत्साह का संचार करने वाली सटीक पदावली का प्रयोग करते हैं। अन्य रसों में करुण, अद्भुत, शांत, रौद्र, भयानक, हास्य आदि की भी यथावसर निष्पत्ति रघुवंश महाकाव्य में हुई है

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्।। (8/67).

इसी प्रकार चौदहवें सर्ग में भी राम द्वारा परित्यक्त सीता के विलाप में सारी प्रकृति की उसके दुःख में सहभागिता

का मर्मस्पर्शी चित्रण कवि ने किया है

नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान् विजयहर्हरिण्यः।
तस्या प्पन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि।। (14/69)

रघुवंश एक महान् राष्ट्रीय महाकाव्य है। इस देश ने सांस्कृतिक और नैतिक आदर्शों की जो ऊंचाइयाँ अधिगत कीं, उन पर आरोहण के लिए रघुवंश एक उत्कृष्ट सोपान परम्परा प्रस्तुत करता है।

कालिदास के बाद के संस्कृत महाकाव्य

कालिदास के महाकाव्यों के बाद संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा में निम्नलिखित तीन महाकाव्यों का सर्वोपरि महत्त्व है भारवि का किरातार्जुनीय, माघ का शिशुपालवध, श्री हर्ष का नैषधीयचरित। ऊपर हमने महाभारत की चर्चा करते हुए बताया है कि बाद के साहित्य पर महाभारत का कितना गहरा प्रभाव है। ये तीनों महाकाव्य भी महाभारत से प्रेरित हैं।

ये तीनों महाकाव्य छठी से ग्यारहवीं शताब्दी ई. के बीच रचे गए। भारवि के किरातार्जुनीय में अन्याय का बदला लेने के लिए अर्जुन की तपस्या का अत्यंत प्रेरणाप्रद चित्रण हुआ है। कवि ने एक तेजस्वी राष्ट्र का सपना इस काव्य में देखा है। शिव के साथ अर्जुन का तुमुल युद्ध अत्यंत प्रभावशाली रूप में चित्रित है। इसकी परिणति है-

उन्मज्जन्मकर इवामरापगायामावेगेन प्रतिमुखमेत्य बाणनद्याः।
गाण्डीवी कनकशिलानिभं भुजाभ्यामाजघ्ने विशमलोचनस्य वक्षः।। (किरातार्जुनीयम् 17/63)

(अर्जुन के सारे शस्त्र चुक गये थे। उनका प्रतिद्वंद्वी किरात फिर भी अपराजित सामने था। अंत में वे बाणो की नदी के बीच ऐसे उछले जैसे गंगा की लहरो में कोई मगर उछाल भरे और त्रिलोचन शिव के सोने की चट्टान जैसे वक्षःस्थल पर उन्होंने दोनों भुजाओं से प्रहार किया।) भारवि ओज और तेज के प्रखर कवि हैं। अर्जुन के माध्यम से उन्होंने एक ऐसे नायक की छवि प्रस्तुत की है, जो शौर्य और साहस का पुंज है। भारवि के ये वचन उनके पूरे महाकाव्य में कर्म में रूपांतरित हुए हैं-

ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मसां जनः।
अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः।। (2/20)

(जलती आग को नहीं बुझी राख को लोग रौंदते हैं। अतः अभिभव के भय से मानी मनुष्य प्राण सुख से छोड़ देता है, अपना तेज नहीं छोड़ता।)

भारवि ने संस्कृत महाकाव्य के क्षेत्र में जिस मार्ग को खोजा, माघ ने उसको नयी ऊंचाइयां दी। उनके शिशुपालवध महाकाव्य में बीस सर्गों में तथा कुल 1650 श्लोकों में श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल नामक दुराचारी राजा का वध करने की कथा है। पहले सर्ग में नारद द्वारका में आते हैं और श्रीकृष्ण को शिशुपाल के संहार के लिए प्रेरित करते हैं। दूसरे सर्ग में श्रीकृष्ण को युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का समाचार मिलता है और वे इस विषय पर बलराम और उद्धव से परामर्श करते हैं कि पहले शिशुपाल का वध करने के लिए प्रस्थान करें या राजसूय यज्ञ में जाएं। फिर वे उद्धव के इस परामर्श को मान लेते हैं कि पहले युधिष्ठिर के यज्ञ में जाना उचित होगा। तीसरे से तेरहवें सर्गों में श्रीकृष्ण का द्वारका से प्रस्थान, मार्ग में रैवतक पर्वत (जो वर्तमान में गिरनार पर्वत के नाम से जाना जाता है, पर उनकी सेना का पड़ाव, रैवतक पर विहार, षड्ऋतु आदि का वर्णन करते हुए मंथर गति से महाकवि श्रीकृष्ण की यात्रा को आगे बढ़ाते हैं और यमुना पार कर श्रीकृष्ण इंद्रप्रस्थ नगर पहुंचते हैं। तेरहवें सर्ग में पांडवों का श्रीकृष्ण से मिलन वर्णित है। चौदहवें सर्ग में श्रीकृष्ण राजसूय यज्ञ में सेवाकार्य करने का संकल्प व्यक्त करते हैं। युधिष्ठिर उन्हें अपने यज्ञ का रक्षक बना लेते हैं। पंद्रहवे सर्ग में शिशुपाल यज्ञ में श्रीकृष्ण के सम्मान को सह नहीं पाता है व राजाओं को उनका अपमान करने के लिए भड़काता है। फिर वह अपने शिविर में जा कर श्रीकृष्ण पर आक्रमण की योजना बनाने लगता है। सोलहवें सर्ग में शिशुपाल का दूत श्रीकृष्ण के पास आता है और उन्हें चुनौती देता है। श्रीकृष्ण की सेना भी युद्ध के लिए तैयार होने लगती है। अठारहवें और उन्नीसवें सर्गों में दोनो सेनाओं की विकट भिड़ंत का वर्णन है और अंत में बीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध का वर्णन है। कथा की दृष्टि से माघ के महाकाव्य का मूल स्त्रोत महाभारत का सभापर्व है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में भी युधिष्ठिर के यज्ञ में शिशुपालवध की कथा महाभारत के अनुसार मिलती है। माघ ने अपने आराध्य तथा महाकाव्य के नायक

श्रीकृष्ण को शौर्य, धैर्य, गांभीर्य के प्रतिमान के रूप में प्रस्तुत किया है।

जिस प्रकार भारवि ने अपने महाकाव्य में अर्जुन के चरित्र द्वारा एक आदर्श वीर का चरित्र निरूपित किया है, उसी प्रकार शिशुपालवध में नायक श्रीकृष्ण के चरित्र द्वारा कवि ने वीर पुरुष की अपनी परिकल्पना को साकार किया है। महाकाव्य के अंतिम चार सर्गों में युद्ध का वर्णन जितना ओजस्वी तथा प्रवाहपूर्ण है, उतना ही चमत्कारमय भी। छठे से ग्यारहवें सर्ग तक के वर्णनों में शृंगार रस को ही मुख्यता मिली है। छठे सर्ग में प्रकृति को उन्होंने प्रेम के रंग में रंग कर प्रस्तुत किया है, तो सातवें सर्ग में शृंगारित अनुभावों का ही चित्रण किया है। नवम सर्ग में तो श्रीकृष्ण की सेना के लोगों के विलास और विहार में शृंगार की अखंड धारा बहा दी है।

माघ की सूक्तियो में पांडित्य, विचारप्रवणता, जीवनानुभव तथा प्रेरणाप्रद संदेशों का समावेश हुआ है। पूरे महाकाव्य में उत्कृष्ट सूक्तियां पदे पदे गुंथी हुई हैं।

श्रीहर्ष के नैषधीयचरित में नल-दमयन्ती के प्रेम और विवाह की कथा है। नल और दमयंती के अनुराग के वर्णन में कवि ने पूर्वानुराग, मिलन और विरह की स्थितियों का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। पूर्वराग के अंतर्गत दमयंती की चिंता, स्मृति तथा अभिलाष – इन अवस्थाओं का सटीक चित्रण है। स्वयंवर के समय नल को माला पहनाती हुई दमयंती के भावप्रवाह में हड़बड़ी और लज्जा की भावनाओं का चित्रण सुंदर है। सखी का रूप धारण किये हुए सरस्वती उपहास में उसका हाथ पकड़ कर खींच कर राजा की ओर ले जाती है और दमयंती जिस प्रकार संभ्रमपूर्वक अपना हाथ छुड़ाती है, उसमें प्रेम के संचारी भावों - भय, त्रस, असूया आदि का रमणीय चित्र प्रस्तुत किया गया है। स्वयंवरप्रसंग के पश्चात् नल और दमयंती के संभोग शृंगार का कवि ने विषद निरूपण किया है। कवि ने इस वर्णन में दमयंती के शरीरज, सत्त्वज तथा स्वभावज तीनों प्रकार के अलंकारो को गूंथ दिया है।

नायक और नायिका के परिहास के चित्रण में हास्य रस शृंगार का पोषक बन गया है। स्वयंवर में आए राजाओं तथा इंद्रादि देवों की दमयंती के प्रति रति अनुभयनिष्ठ होने से शृंगाररसाभास में परिणत हो जाती है। दमयंती के प्रति उसके माता पिता के स्नेह का चित्रण कर के कवि ने भावध्वनि या वात्सल्य को भी मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। नल द्वारा पकड लिए जाने पर हंस की उक्तियों में करुण रस की निष्पत्ति भी बड़ी प्रभावशाली है। हंस कहता है-

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेश जनस्तमर्दयन्नहो विधे त्वां करुणा रुणाद्धिनो।। (1/135)

(मैं अपनी मां की एकमात्र संतान हूं मेरी मां वृद्धावस्था से आकुल है। मेरी हंसिनी ने अभी अभी चूजे जन्मे हैं। इन दोनो का मैं ही अकेला सहारा हूं। हे विधाता! ऐसे मुझको मारते हुए क्या तुम्हें करुणा रोक नहीं रही?)

नल के गुणों के निरूपण में वीररस के चारों प्रकार दानवीर, दयावीर, धर्मवीर तथा युद्धवीर नैषधीयचरित में व्यक्त हुए हैं। स्वर्णहंस को देख कर नल और दमयंती के कौतुक के चित्रण में अद्‌भुत रस भी है। नल और दमयंती के प्रथम साक्षात्कार में दोनों एक दूसरे को देख कर जिस प्रकार विस्मयाविष्ट और कौतुक से आकुल हो जाते हैं, उस प्रसंग में अद्‌भुत रस शृंगार का अंग बन कर आया है। कीकटाधिप आदि स्वयंवरसमागत राजाओं के वर्णन में भी कवि ने कुशलता से हास्यरसान्वित अद्‌भुत का विन्यास कर दिया है। देवो के नल का समान रूप बना कर उसके आसपास बैठ जाना और अंत में स्वयंवर हो जाने पर अपने प्रकृत रूप में आना इस प्रसंग के चित्रण में भी अद्‌भुत की अंतर्धारा है।

11.7 भारतीय कालजयी साहित्य का अनुवाद के माध्यम से रसास्वाद

कालिदास के मेघदूत ने हिन्दी के अनेक महान साहित्यकारों को अनुवाद के लिए आकर्षित किया है। मेघदूत के छन्द में महादेवी वर्मा द्वारा किया गया यह अनुवाद पढ़कर हम समझ सकते हैं कि किस प्रकार एक महान् रचनाकार की कृति का एक अच्छे कवि द्वारा किया गया अनुवाद मौलिक रचना का आनंद देता है :

आषाढ़ मास का प्रथम दिवस आया!
ज्यों गजेंद्र क्रीड़ा में तन्मय, टकराता टीलों से निर्भय,
शैल शिखर संलग्न मेघ वैसे ही घिर छाया।
आषाढ़ मास का प्रथम दिवस आया।

स्नेह जगा देने वाले के, सम्मुख हो बादल काले से,
रोक आँसुओं को कुबेर का अनुचर अकुलाया।
आषाढ़ मास का प्रथम दिवस आया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मेघदूत के 'एक पुरानी कहानी' शीर्षक पुस्तक में दूत का व्याख्यात्मक अनुवाद किया है। इस श्लोक की व्याख्या द्विवेदी जी के शब्दों में इस प्रकार है:

अचानक आषाढ़ मास की पहली तिथि को रामगिरि केसानुदेश में लगे हुए एक काले मेघ को देखकर व्याकुल हो उठा, जैसे कोई काला मतवाला हाथी पर्वत के सानुदेश पर ढूंसा मारने का खेल खेल रहा हो। उत्कंठा जगाने वाले मेघ के सामने खड़ा होना क्या सहज है? आँसुओं का पारावार भीतर ही विक्षुभित हो रहा था, बाहर उसका कोई चिह्न नहीं दिखाई दे रहा था।

11.8 सारांश

इस इकाई में आपने भारतीय कालजयी साहित्य के बारे में जानकारी प्राप्त की। भारतीय साहित्य की कुछ मुख्य कालजयी कृतियों का भी परिचय आपने इस इकाई के माध्यम से प्राप्त किया। हमने जाना कि कालजयी रचना किसी एक देश काल में सीमित नहीं रहती। उसकी प्रासंगिकता आने वाले समय में लगातार बढ़ती जाती है। एक कालजयी रचना की हर युग में नये सिरे से व्याख्या की जाती रही है। साथ ही वे अपने देश की संस्कृति को बनाने में भी बड़ी भूमिका अदा करती है। आकार में छोटा या बड़ा होना रचना को कालजयी नहीं बनाता। कालजयी रचनाओं के अनुवाद किसी भी देश, समाज या जाति को विश्व में उसकी पहचान दिला सकते हैं। साथ ही वे विश्व संस्कृति के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

अगली इकाई में हम प्राचीन भारतीय कालजयी साहित्य के आधुनिक भारतीय भाषाओं के अनुवाद के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

11.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. कालजयी रचना की क्या पहचान है?
2. भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद की आवश्यकता बताइए।
3. रामायण के प्रणेता कौन हैं?
4. आदिकाव्य किसे कहा जाता है?
5 रामायण का मुख्य (अंगी) रस क्या है?
6. वाल्मीकि रामायण के सात कांडों के नाम बताइए।
7. रामायण से प्रभावित भारतीय भाषाओं की कृतियों के नाम बताइए।
8. कालिदास के महाकाव्यों का परिचय दीजिए।
9. संदेशकाव्य या दूतकाव्य की परम्परा का जन्म किस काव्य से हुआ।

11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- शर्मा, गोपाल, तारा तिक्कू एवं जगदीश चतुर्वेदी (सं); *भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास,* दिल्ली, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय।
- पनिकर, क.अय्यप्पा; *मेडिएवल इंडियन लिटरेचर सीरिज* (खंड 1-4), दिल्ली, साहित्य अकादेमी।
- राघवन, वी.; *द रामायणा ट्रेडिशन इन एशिया,* दिल्ली, साहित्य अकादेमी।
- Das, Sisir Kumar; *A History of Indian Literature,* Delhi, Sahitya Academi.
- Dey, S.K., 1959; *Aspects of Sanskrit Literature,* USA, University of California.
- Keith, A.B., 1993; *A History of Sanskrit Literature,* New Delhi, Motilal Banarsi Das.

इकाई 12 प्राचीन भारतीय कालजयी साहित्य का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 काल-विभाजन

12.3 प्राचीन भारतीय कालजयी साहित्य

12.4 भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद का महत्त्व

12.5 भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद की समस्याएँ

12.6 भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद के विभिन्न प्रकार व प्रारूप

12.7 सारांश

12.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बिन्दुओं के विषय में जान सकेंगे :

- भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद की आवश्यकता क्या है;
- कालजयी साहित्य के भारतीय भाषाओं में हुए अनुवाद की समस्याएं क्या-क्या हैं;
- प्राचीन भारतीय कालजयी रचनाएं कौन-कौन सी हैं;
- साथ ही ऐसे साहित्य के अनुवाद की विशेष प्रविधियों और प्रकारों की जानकारी हासिल करके आप स्वयं एक भाषा से दूसरी भाषा में ऐसे साहित्य का अनुवाद करने का अभ्यास कर सकेंगे; और
- भारतीय कालजयी साहित्य के श्रेष्ठ अनुवादों का रसास्वाद और उनके माध्यम से अनुवाद की प्रविधियों का परिचय।

12.1 प्रस्तावना

पिछले खण्डों की इकाइयों में आपने अनुवाद कार्य के महत्त्व और आवश्यकता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की है। प्राचीन काल से लेकर अब तक अनुवादों की परम्परा के बारे में भी आप जानते हैं।

पिछली इकाई में आपने जाना कि कालजयी साहित्य किसे कहते हैं। साहित्य की प्रत्येक परम्परा में ऐसी रचनाएं सदैव आती रही हैं जो किसी एक देश काल तक सीमित नहीं रहतीं। जिस समय और जिस स्थान पर ये रचनाएं लिखी जाती हैं उस समय और उस स्थान में तो उनकी श्रेष्ठता स्वीकार की ही जाती है, पर उसके बाहर भी उनको महत्त्व प्राप्त होता है। ऐसी रचनाओं को अंग्रेजी में क्लासिक कहा जाता है।

इस खण्ड मे हमने छात्रों की सुविधा के लिए कालजयी साहित्य को तीन कालों में विभाजित किया है – प्राचीन भारतीय कालजयी साहित्य, मध्यकालीन भारतीय कालजयी साहित्य और आधुनिक भारतीय कालजयी साहित्य। प्रस्तुत इकाई में हम प्राचीन भारतीय कालजयी साहित्य की चर्चा करेंगे। महत्वपूर्ण कालजयी रचनाएं कौन-कौन सी हैं इसकी संक्षिप्त चर्चा हम पिछली इकाई में कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में सम्बद्ध विषय से जुड़े अन्य महत्वपूर्ण बिन्दुओं-कालजयी साहित्य के अनुवाद का महत्व, उसके अनुवाद की समस्याएं आदि पर भी यहां बात की जाएगी।

12.2 काल-विभाजन

वैदिक तथा लौकिक संस्कृत भाषा के संपूर्ण समय को मोटे तौर पर चार कालों में विभाजित किया जाता है। वैदिक भाषा काल (2000 ई.पू. से 800 ई.पू.) के पश्चात् ब्राह्मण काल (800 ई.पू. से 500 ई.पू.) आता है जिसमें स्मृति, वेदांत, आरण्यक, उपनिषद आदि से सम्बन्धित अत्यंत महत्त्वपूर्ण साहित्य की रचना हुई। ब्राह्मण काल के बाद सूत्र-काल (500 ई.पू. से 200 ई.पू.) का प्रादुर्भाव हुआ, जब स्रौतसूत्र, गृहसूत्र, धर्मसूत्र जैसे सूत्रग्रंथों की रचना हुई। इस काल में साहित्य (वाङ्मय) का विस्तार हुआ। सूत्र के छह वेदांग सामने आए - शिक्षा (Phonetics), छान्दस (Meter), व्याकरण (Grammar), निरुक्त (Etymology), कल्प (Religious practice) तथा ज्योतिष (Astrology)। वात्स्यायन का विश्व-प्रसिद्ध कामसूत्र इसी काल में रचा गया। संस्कृत काल (500 ई.पू. से 1100 ई.) को दो भागों में विभाजित किया जा सकती है – पहले को काव्यकाल (500 ई.पू. से 50 ई.पू.) कह सकते हैं जब रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य महान काव्यग्रंथ रचे गए। दूसरा काल था दरबारी काल (200 ई. से 1100 ई. तक)। दो-टूक विभाजन का अभाव उस काल की रचनाओं के निश्चित समय-निर्धारण नहीं कर पाने की मजबूरी के चलते भी है। ऐसा भाषा के अनेक रूप, प्रक्षिप्त अंशों की संभावना आदि अनेक कारणों से है। इस संपूर्ण काल में प्रचुर मात्र में मौलिक लेखन हुआ। वेदों से लेकर ज्ञान, दर्शन, मीमांसा, न्याय, गणित आदि पर खूब मौलिक सृजन हुआ लेकिन अनुवाद की दृष्टि से जो दो रचनाएं प्रमुख हैं, वे हैं – वाल्मीकि कृत रामायण तथा वेदव्यास कृत महाभारत। साहित्य के प्रत्येक युग में इनके अनुवाद भी हुए और इन्हें उपजीव्य बनाकर नई मौलिक रचनाएं भी सामने आईं जिनके विषय में हम अगली इकाइयों में विस्तार से पढ़ेंगे।

जैसा कि हम पीछे पढ़ चुके हैं कि क्लासिक्स अर्थात कालजयी रचनाएं अपने देश की संस्कृति का हिस्सा होती हैं। साथ ही वे अपने देश की संस्कृति को बनाने में भी बड़ी भूमिका अदा करते हैं। वे न केवल विरासत होती हैं, विरासत बनाती भी हैं। ग्रीक भाषा में सोफोक्लीज़ का ईदिपस नाटक या महाकवि होमर का ओडिसी महाकाव्य, लेटिन में वर्जिल का एनीड, दान्ते का डिवाइन कॉमेडी, संस्कृत में आदिकवि वाल्मीकि का रामायण, वेदव्यास का महाभारत, और कालिदास के नाटक – अभिज्ञानशाकुंतल, विक्रमोर्वशीय आदि, अंग्रेजी में स्पेन्सर का फेयरी क्वीन और जॉन मिल्टन का पेराडाइज़ लॉस्ट आदि कालजयी रचनाओं के अनेक उदाहरण हैं।

कालजयी रचना प्रत्येक युग में नया अर्थ खोलती है। उसकी व्याख्या और पुनर्व्याख्या होती रहती है। इस बात को हम एक उदाहरण से स्पष्ट करना चाहेंगे। कालिदास का नाटक है – अभिज्ञानशाकुन्तल। यह एक कालजयी रचना है। विश्वसाहित्य के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में इसकी गिनती होती है। इस नाटक की कई दृष्टिकोणों से बार बार नई व्याख्याएं होती रही हैं। इनमें यह नाटक जिन रूपों में सामने आता है, उनमें से कुछ हैं :

1. प्रेम की कथा
2. पर्यावरण के प्रति मनुष्य के लगाव और प्रकृति और मनुष्य के साहचर्य की कथा
3. दो संस्कृतियों (नगर की संस्कृति और आश्रम की संस्कृति) के टकराव की कथा
4. भारतीय जीवनमूल्यों या आदर्शों की कथा
5. पुरुष के आधिपत्य और स्त्री की दयनीयता की कथा

यदि शास्त्रीय अथवा चिंतन प्रधान रचना का उदाहरण लेना चाहें तो श्रीमद्भगवद्गीता का नाम लिया जा सकता है।

12.3 प्राचीन भारतीय कालजयी साहित्य

काल-विभाजन के अनुसार हमने विभिन्न कालों में आईं प्रमुख कालजयी रचनाओं के विषय में संक्षेप में पढ़ा। रामायण और महाभारत के अतिरिक्त महत्वपूर्ण रचनाओं में कालिदास कृत नाटकों का विशेष स्थान है। महाकवि कालिदास के नाटक अभिज्ञानशाकुंतल, मेघदूत, विक्रमोर्वशीय का संस्कृत साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। उनके द्वारा रचित रघुवंश रघुकुल की कथा को आधार बनाकर लिखा गया महाकाव्य है। इसके अतिरिक्त शूद्रक कृत मृच्छकटिकम्, भास कृत स्वप्नवासवदत्तम् भी संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

विचार प्रधान साहित्य की कोटि में चाणक्य कृत अर्थशास्त्र, वात्स्यायन के कामसूत्र के अतिरिक्त मनुस्मृति का महत्वपूर्ण स्थान है।

इसके अतिरिक्त पालि व प्राकृत भाषाओं में लिखित कालजयी रचनाओं का भी यहां उल्लेख किया जाना आवश्यक है। प्राकृत भाषा में गाहा सतसई (गाथा सप्तशती) का स्थान बेहद महत्वपूर्ण है। इसके समय का अनुमान 2000 ईसापूर्व से 200 ईसवीं तक के बीच कहीं लगाया जाता है। महाराष्ट्री प्राकृत में रचित ये कविताएं प्रेम से पगी हैं जिनमें से अधिकांश की रचयिता स्त्रियां हैं। गाथा सप्तशती की अधिकांश कविताओं का अनुवाद 1881 में अल्ब्रेख्त वेबर ने जर्मन में तथा 1970 में अंग्रेजी में इनका अनुवाद राधागोविन्द बासक द्वारा किया गया। इसके अतिरिक्त अश्वघोष के नाटक तथा राजशेखर कृत कर्पूरमंजरी भी उल्लेखनीय हैं।

पालि साहित्य की महत्वपूर्ण रचनाओं में जातक कथाएं, धम्मपद, अट्टकथा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ रचनाओं का उल्लेख अगली इकाई में विस्तार से किया गया है।

12.4 भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद का महत्त्व

साहित्य किसी भी समाज की धरोहर होता है। किसी समाज को जानने के लिए उसके साहित्य को जानना अत्यंत आवश्यक है। इतिहास लेखन एक आधुनिक परिघटना है। इससे पूर्व तो साहित्य ही समय विशेष को जानने का माध्यम रहता आया है।

साहित्य किसी भी समाज का दर्पण होता है। उसमें भी कालजयी साहित्य किसी भी देश या जाति की महत्त्वपूर्ण विरासत होता है। उसे बचा कर रखना समाज और देश के नागरिकों का दायित्व है।

आज भी प्राचीन साहित्य को विश्व की धरोहर मान कर संजोकर रखा गया है। किंतु साहित्य के बचाव के लिए अनुवाद अथवा पुनःसृजन से बेहतर कुछ नहीं है। कालजयी साहित्य का बचाव या सुरक्षा हम अनुवादों के माध्यम से भी कर सकते हैं। यदि मूल भाषा, जिसमें कोई कालजयी रचना लिखी गई है, प्रचलन से बाहर हो गई है, तो ऐसी कालजयी कृति के अनुवाद की आवश्यकता और महत्त्व और बढ़ जाते हैं। कालजयी साहित्य के अनुवाद द्वारा हम अपनी संस्कृति को नये सिरे से पहचानते हैं और राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा जातीय स्मृति को फिर से हासिल करते हैं। कालजयी रचनाओं के अनुवाद किसी भी देश, समाज या जाति को विश्व में उसकी पहचान दिला सकते हैं। साथ ही वे विश्व संस्कृति के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। ऊपर हमने अभिज्ञान शाकुन्तल की चर्चा की है। 1785 में प्रसिद्ध विद्वान् सर विलियम जोंस ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया। यह अनुवाद यूरोप में पहुँचा। इसे पढ़कर विश्व के साहित्यप्रेमी चमत्कृत हुए। यह स्वीकार किया गया कि भारत के पास ऐसी प्राचीन रचनाएं हैं, जो संसार की सबसे अच्छी साहित्यिक कृतियों में गिनी जा सकती हैं। सर विलियम जोंस के अंग्रेजी अनुवाद का भी अनुवाद फोस्टर ने जर्मन में किया, जिसे पढ़ कर महाकवि गेटे मुग्ध हो उठे। वास्तव में केवल शाकुन्तल के एक अनुवाद के प्रकाशन ने संसार में भारत की उज्ज्वल छवि बनाई, भारतीयजन में राष्ट्रीय स्वाभिमान जगाने में मदद की। विश्व साहित्य की अवधारणा की नींव रखे जाने में भी अनुवाद की महती भूमिका है।

किसी भी क्लासिक अथवा कालजयी रचना का एक अनुवाद कभी पर्याप्त नहीं होता। ऐसा दो कारणों से होता है। एक कालजयी कृति के अभिप्रायों का दायरा इतना बड़ा होता है कि उसे अन्य भाषा के एक अनुवाद में समेटना असंभव हो जाता है। दो अनुवाद की भाषा एक सीमित देश-काल में प्रासंगिक होती है।

12.5 भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद की समस्याएँ

अनुवाद की प्रक्रिया और उसकी जटिलता का परिचय आप पिछली इकाइयों में प्राप्त कर चुके हैं। यह माना जाता है कि अनुवाद स्वभावतः एक असंभव कार्य है क्योंकि किसी भी शब्द का स्थान कोई दूसरा शब्द नहीं ले सकता है। कालजयी साहित्य के अनुवाद में समस्या और भी बढ़ जाती है। यदि कालजयी साहित्य दार्शनिक या विचार प्रधान हो तो अन्य भाषा में उसके लिए सटीक शब्दावली खोज पाना कठिन होता है। यदि कालजयी साहित्य भाव प्रधान व ललित वाङ्मय के अंतर्गत है तो उसके मुहावरे, उसमें प्रतिबिम्बित संस्कृति देश काल और मनःस्थितियों को अन्य भाषा में प्रकट करना कठिन होता है।

कभी-कभी मूलरचना के बहुत छोटे से और सरल लगने वाले वाक्य का भी अन्य भाषा में सटीक या सही अनुवाद करना कठिन हो जाता है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का ही एक उदाहरण लें। नाटक के पहले अंक में नायक दुष्यन्त और नायिका शकुन्तला पहली बार एक दूसरे को देखते हैं। परिचय जानने के बाद दुष्यन्त शकुन्तला से पूछता है- *अपि तपो वर्धते'?* यह तीन शब्दों का छोटा वाक्य है। इसका शब्दशः अनुवाद होगा 'क्या तपस्या बढ़ रही है'? पर इस अनुवाद में कुछ भी स्पष्ट नहीं हो पाता कि पूछने वाले ने क्या पूछा और पूछने के पीछे क्या आशय है। यदि इस वाक्य के शब्दों को थोड़ा स्पष्ट कर के और ढंग से अनुवाद करें तो यह अनुवाद होगा- 'तुम्हारी तपस्या तो अच्छी तरह चल रही है न?' इस अनुवाद में भी निम्नलिखित समस्याएँ हैं :

1. वक्ता का आशय स्पष्ट नहीं है।
2. अनूदित वाक्य मूल कृति के वातावरण का आभास तो देता है, पर जिस भाषा में अनुवाद किया गया है, उसकी प्रकृति के अनुरूप नहीं है।

प्रत्येक भाषा का अपना मुहावरा होता है। 'तपस्या तो बढ़ रही है?' यह कुशल प्रश्न के लिए आश्रमों में बोली जाने वाली संस्कृत का मुहावरेदार वाक्य है। हिन्दी के मुहावरे में इसका 'कैसी हैं आप?' इस तरह अनुवाद किया जाये, तो अनुवाद स्पष्ट हो जाता है।

12.6 भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद के विभिन्न प्रकार व प्रारूप

कालजयी साहित्य के अनुवाद के लिए विभिन्न पद्धतियां अपनाई जाती हैं। इसके अनुवाद को हम निम्नलिखित कोटियों में बांट सकते हैं:

1. शाब्दिक अनुवाद
2. भावपूर्ण अनुवाद
3. व्याख्यात्मक तथा पुनःसृष्टिपरक अनुवाद
4. स्वाभिनिवेशपूर्ण अनुवाद

शाब्दिक अनुवाद कोश और व्याकरण के आधार पर एक भाषा की कृति का दूसरी भाषा में शब्दशः उल्था करने पर होता है।

भावपूर्ण अनुवाद में अनुवादक शब्दों की बजाय मूल रचना के भाव को प्रस्तुत करता है। व्याख्यात्मक अनुवाद मूल कृति के भीतर के अभिप्रायों को खोलते हुए उन्हें स्पष्ट करता है। स्वाभिनिवेश मूलक अनुवाद में अनुवादक अपनी समझ से अनुवाद में कुछ अतिरिक्त आशय जोड़ देता है।

कालिदास के एक नाटक मेघदूत के एक श्लोक के अनुवाद का उदाहरण देकर हम इसे स्पष्ट करेंगे। मूल श्लोक यह है :

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः
शापेनास्तङ्.गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेशु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।1।।

इसका शाब्दिक अनुवाद इस प्रकार होगा :

प्रिया के विरह के कारण गुरु (भारी) एक वर्ष तक भोग्य स्वामी के शाप के द्वारा जिसकी महिमा अस्त हो गई थी, जिसने अपने कर्त्तव्य में प्रमाद (असावधानी) किया था ऐसे यक्ष ने सीता के स्नान से पवित्र जल वाले, चिकनी छायादार पेड़ों वाले रामगिरि के आश्रमों में निवास किया।

इस शाब्दिक अनुवाद को पढ़कर मूल रचना का न तो सही सही अभिप्राय जाना जा सकता है, न उसका आस्वाद पाया जा सकता है। अब इसी पद्य के एक भावपूर्ण अनुवाद का उदाहरण देखें, जो सुप्रसिद्ध आचार्य केशवप्रसाद मिश्र ने किया है :

धनपति ने सेवा से बेसुध एक यक्ष पर कोप किया,
उसे वर्ष भर प्रिया-विरह का कारण दूभर शाप दिया।
तब निरस्त हो उसने डेरे रम्य रामगिरि पर डाले,
जो सीता-मज्जन से शुचि जल और घनी छायावाले।।

इस अनुवाद में मूल के एक एक शब्द का शब्दशः अर्थ नहीं खोजा जा सकता। पर कालिदास के श्लोक का भाव अनुवादक ने इसमें सुंदर रूप में संजो दिया है।

यह अनुवाद पचास वर्ष पुराना है। इसलिए इसकी हिन्दी आज की हिन्दी नहीं रह गई। 'कर्तव्य में असावधान' के लिए 'सेवा से बेसुध' और 'सीता के स्नान' के लिए यहां अनुवादक ने 'सीता-मज्जन' शब्द रखे हैं। ऐसे शब्द प्रचलन में नहीं हैं। इसीलिए हमने ऊपर कहा है कि महान् कृतियों का अनुवाद बार-बार करना जरूरी है।

इसी पद्य के व्याख्यात्मक और पुनःसृष्टिपरक अनुवाद का नमूना देखें। यह अनुवाद राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा किया गया है :

कोई एक यक्ष था। वह कुबेर का चाकर
चूक चाकरी में कर बैठा कभी रिसा कर
उसको तब अपनी बस्ती से देसनिकाला
धनपति ने था एक वर्ष के हित दे डाला
पहला दुख बिछोह का इसी शाप से जाना
अपने घर से दूर अकेले जो था जाना
महिमा अस्त शाप ने कर दी, था मन टूटा
रहा रामगिरि जा कर। साथ बन्धु का छूटा
माता सीता कभी नहाई उन घाटों पर
वहाँ कई थे नदियाँ, नाले, सरवर, पोखर
पावन था जिनका जल। थी पेड़ों की छाया
घनी और शीतल, प्रिय। ऐसा वह गिरि, वह वन
उसके आश्रम बने यक्ष के आश्रय पावन।

व्याख्या के विस्तार की दृष्टि से अनुवाद में रोला छंद और सॉनेट को अपनाया गया है।

इस अनुवाद में कालिदास के श्लोक के भावों को लेकर उनकी व्याख्या की गई है, साथ ही नये सिरे से उन्हें रचा गया है। मूल श्लोक में शाप को कांता (प्रिया) के विरह से गुरु (भारी) कहा गया है। गुरु का अर्थ सिखाने वाला भी होता है। तब यहां यह दूसरा अर्थ निकलता है – शाप यक्ष को सिखा गया है कि प्रिया का विरह कैसा होता है। इस आशय को अनुवादक ने पांचवी पंक्ति में फिर से रचा है (पहला दुख जाना)।

स्वाभिनिवेशपूर्ण अनुवाद में अनुवादक अपनी समझ से कुछ ऐसी बात अतिरिक्त जोड़ देते हैं, जो मूल रचना में नहीं रहतीं, न उसका अंतर्निहित आशय कही जा सकती हैं। मेघदूत के इसी श्लोक का एक और अनुवाद देखें:

प्रेम रंगों में रंगा यक्ष च्युत, हो कोई जब अपने आप।
क्रोध-अग्नि प्रज्वलित हुई तब, धन कुबेर का बनकर शाप।।
रामगिरी के आश्रम आश्रय पा, निर्वासित बिताया साल।
सीता के स्नानों से पुलकित, छाया में बीता विरही ज्वाल।।

इस अनुवाद में यक्ष के लिए प्रेम 'रंगों में रंगा' तथा 'अपने आप' और कुबेर के लिए 'क्रोध अग्नि प्रज्ज्वलित हुई तब' ये शब्द अनुवादक ने अपनी ओर से जोड़े हैं, यह अनुवादक की अपनी समझ है, जो मूल पद्य के अभिप्राय से अलग है। यही नहीं तीसरी पंक्ति में 'निर्वासित बिताया साल' यह कथन तो अत्यंत भ्रांतिजनक है, क्योंकि अगले पद्य में ही कालिदास ने कहा है कि यक्ष को रामगिरि पर रहते हुए कुछ महीने बीत गए थे। उसके पूरे शाप की अवधि ही एक वर्ष की थी यह भी इस पद्य में कवि ने कहा ही है। आगे यक्ष अपनी प्रिया को संदेश देता

हुआ कहता है कि अब शाप की अवधि बीतने में कुछ महीने ही बचे है। अतः अनुवादक द्वारा काव्य के आरंभ में एक साल बीत जाने की बात मन गढंत है।

मेघदूत का दूसरा श्लोक इस प्रकार हैः

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ।।2।।

इसका शाब्दिक अनुवाद यह होगा :

अबला से बिछड़े तथा स्वर्णवलय गिर जाने से रिक्त कलाई वाले कामी ने उस पहाड़ पर कुछ महीने बिताने के बाद आषाढ के पहले दिन शिखर पर टिके, ढूसा मारने के लिए झुके हाथी के समान दर्शनीय बादल को देखा।

आचार्य केशव प्रसाद मिश्र ने इस पद्य का भावपूर्ण अनुवाद इस प्रकार किया है :

उसी शैल पर उस विरही का आठ मास रोते बीता,
कृश होने से कचन-कड्कण गिरकर हाथ हुआ रीता।
अब असाढ़ आते ही उसने चोटी पर बादल देखा,
क्रीड़ा में झुक ढूह ढाहते हाथी सा उसको लेखा।।

इस अनुवाद में कुछ महीने बिताने के बाद के स्थान पर 'आठ मास रोते बीता' यह अभिव्यक्ति दी गई है। यह कालिदास के भाव के अनुरूप है।

अब इसी का व्याख्यात्मक अनुवाद पढ़ें :

निपट अकेला वह यों रहा। महीनों झेला
सन्नाटे का बोझ, लगा कर भीतर मेला
अपने उलझे सपनों का। बूझ भी न पाया
सोने का कंगन कब गिरा, कलाई छूछी
कब हो गयी ध्यान भी इसका उसे न आया
बना बावला जब से बिछुड़ी अबला उसकी ।
ऐसे में असाढ़ का पहला दिन फिर आया
घुमड़ा कोई बादल ऊपर, फिर झुक आया

नीचे, चोटी पर पहाड़ की ठहरा आ कर

सटा हुआ था वह लपेट कर गिरि को कस कर
जैसे शीश झुका कर हाथी कोई वनचर
ढूसा मार रहा हो चट्टानों पर बन कर
खेल खेल में मतवाला। था दर्शनीय घन
लगा यक्ष को ..... आया यह कोई अपना जन।

इस अनुवाद में प्रथम दो पंक्तियां अनुवादक ने कवि का आशय स्पष्ट करने के लिए अपनी ओर से जोड़ी हैं। कलकवलयभ्रंशरिक्त प्रकोष्ठ' - यक्ष के लिए एक विशेषण है। इसको फैला कर व्याख्यात्मक अनुवाद किया गया है- 'बूझ भी न पाया' सोने का कंगन कब गिरा कलाई छूछी/कब हो गई – ध्यान भी इसका उसे न आया'। 'अबला विप्रयुक्त' शब्द को भी यहाँ एक पूरी पंक्ति में फैला कर समझाया गया है। इसी तरह मेघ को कालिदास ने 'आश्लिष्टसानु' कहा है। इसके भाव को स्पष्ट करने के लिए पूरी दो पंक्तियाँ लगाई गई हैं-

झुक आया
नीचे, चोटी पर पहाड़ की ठहरा आ कर
सटा हुआ था, वह लपेट कर गिरि को कस कर

अंतिम पंक्ति बादल के विषय में 'लगा यक्ष को आया यह कोई अपना जन' अनुवादक ने अपनी ओर से जोड़ी है। इस प्रकार का कोई अभिप्राय ही मूल श्लोक में नहीं है। पर यह मूल रचना के भाव के अनुरूप है।

अब इसी पद्य का स्वाभिनिवेशपूर्ण अनुवाद लिया जाए। श्रुतिवन्त दुबे का अनुवाद है-

प्रिया याद में धीरे-धीरे, यक्ष हुआ अति व्याकुल निर्बल।
प्राण त्रण निष्पन्द कलाई, कंगन गिरते ढीले खुल-खुल।।
पावस ऋतु के पहले बादल, काम भरे जब मंड़राए।
दर्शनीय उन्मत्त गजों-से, शैल तोड़ते घिर आए।।

इसमें 'निस्पंद कलाई' 'कंगन गिरते ढीले खुल खुल' बादल के लिए 'काम भरे' जैसे कथन मूल श्लोक से मेल नहीं खाते। अनुवादक ने (यक्ष की कलाई से) कई कंगनों को कई बार गिराया है, जबकि कालिदास का आशय यह लगता है कि यक्ष एक कंगन पहने था, उसे पता नहीं चला वह कंगन कब गिर गया। (इससे विरह में यक्ष की बेसुध मनःस्थिति जाहिर होती है)।

एक बादल को अनुवादक ने कई बादल बता दिया है। ढूंसा मारने को वह शैल तोड़ना कह रहा है। इस तरह इस अनुवाद में मूल श्लोक के साथ छेड़छाड़ हुई है।

12.7 सारांश

इस इकाई में हमने कालजयी साहित्य के अनुवाद को लेकर विस्तृत जानकारी प्राप्त की। कालजयी साहित्य को अंग्रेजी में क्लासिक कहते हैं। इस साहित्य में उन महान रचनाओं की गणना होती है जो हर युग और हर देश काल में प्रासंगिक बनी रहती हैं। ऐसी रचनायें जातीय विरासत और सांस्कृतिक धरोहर का अंग होती हैं। वे किसी भी देश या समाज की संस्कृति के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हर कालजयी रचना की कई दृष्टियों से अनेक व्याख्याएँ होती रहती हैं। कालजयी रचनाओं के अनुवाद किसी भी देश, समाज या जाति को विश्व में उसकी पहचान दिला सकते हैं। साथ ही वे विश्व संस्कृति के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। कोई भी कालजयी रचना एक विशिष्ट संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती है। वह भाषा शैली और अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी प्रौढ़ होती है इसलिए अन्य भाषा में उसका अनुवाद करना कठिन होता है।

कालजयी कृतियों के शाब्दिक, भावपूर्ण, व्याख्यात्मक तथा पुनःसृष्टिपरक और स्वाभिनिवेशपूर्ण अनुवाद किये जाते रहे हैं। इन सभी प्रकार के अनुवादों की अपनी अपनी सीमाएं हैं तथा अपनी अपनी दृष्टि से अलग-अलग क्षेत्रों और अलग-अलग पाठकों के लिए उपयोगी भी हुआ करते हैं।

12.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. कालजयी साहित्य किसे कहते हैं?
2. भारतीय साहित्य से कुछ कालजयी रचनाओं के उदाहरण देते हुए उनकी संक्षिप्त विशेषताएं बताइए।
3. भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद का महत्व बताइए।
4. भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद में कौन-कौन सी समस्याएं आती हैं?
5. भारतीय कालजयी साहित्य के अनुवाद के प्रकार बतलाइए?

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- विश्वनाथ, 1988; *साहित्य दर्पण, मेरठ,* साहित्य भण्डार।
- भवभूति, 87–1986; *उत्तररामचरित्र, मेरठ,* साहित्य भण्डार।
- Dey, S. K.; *Aspects of Sanskrit Literature,* 1959, USA, University of California.
- Keith, A .B.; 1993, *A History of Sanskrit Literature*, New Delhi, Motilal Banarasi Das.
- Keith, A.B.; 1928 , *The Development and History of Sanskrit Literature,* Sanjay Prakashan.

इकाई 13 मध्यकालीन भारतीय कालजयी साहित्य का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 मध्यकाल

13.3 आधुनिक भारतीय भाषाएँ

13.4 अनुवाद का अर्थ और आशय

13.5 विभिन्न अनुवादों का परिचय

13.6 सारांश

13.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप :

- मध्यकालीन भारतीय कालजयी ग्रंथों से परिचित हो सकेंगे;
- आधुनिक भारतीय भाषाओं के संक्षिप्त इतिहास की जानकारी पा सकेंगे;
- विभिन्न भारतीय भाषाओं में हुए कालजयी साहित्य के अनुवादों का जायजा ले पाएँगे, और इस प्रकार श्रेष्ठ ग्रंथों के साहित्यिक-सांस्कृतिक अवदान के महत्त्व से अवगत हो सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

मध्यकालीन भारतीय कालजयी साहित्य से आशय संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, तमिल आदि भाषाओं में मध्यकाल में रचे गए उत्कृष्ट ग्रंथों से है। ये ग्रंथ आदर्श, चिर प्रतिष्ठित, श्रेण्य तथा उच्च साहित्यिक गुणों से युक्त हैं। अंग्रेजी में इन्हें क्लासिक्स (classics) कहा जाता है।

वेद भारत की आदि रचनाएँ हैं और उनकी भाषा देश की प्राचीनतम भाषा मानी जा सकती है। वेद श्रुति के रूप में विकसित हुए, न कि लिखित रूप में। परम्परा में उनका शुद्ध उच्चारण सुरक्षित रखने के प्रयास किए गए और बहुत बाद में चलकर उन्हें लिपिबद्ध किया गया। वेदों की भाषा वैदिक संस्कृत कहलाई। ऋक्, साम, यजुर और अथर्व - इन चार वेदों में भारतीय जीवन-दर्शन और साधना की अद्भुत अभिव्यक्ति हुई है। यह वेदवाणी और देववाणी भी कहलाई। जीवन और जगत का गहन साक्षात्कार इनमें मिलता है। विद्वानों की मान्यता है कि वैदिक संस्कृत 2000 ई.पू. से 200 ई.पू. तक प्रचलित भाषा थी। वैदिक संस्कृत के गर्भ से संस्कृत या लौकिक संस्कृत पैदा हुई जो 400 ई.पू. से 1100 ई. सन् तक भारतीय मनीषा और संस्कृति की मुख्य वाहिका रही। 400 ई.पू. में महान वैयाकरण पाणिनी ने अष्टाध्यायी की रचना कर संस्कृत (Perfected/pure/refined/prepared) भाषा की संरचनात्मक पूर्णता को रेखांकित किया। संस्कृत के बारे में लोगों में एक ऐसी धारणा भी देखने को मिलती है कि यह धर्म-विशेष से जुड़ी हुई, पूजापाठ और मंत्रों की भाषा है। सच तो यह है कि संस्कृत के अतिविशाल साहित्य का पाँच प्रतिशत से भी कम धार्मिक साहित्य है और पचानवे प्रतिशत से भी कहीं ज्यादा विज्ञान, दर्शन, न्याय, व्याकरण, काव्य आदि से सम्बन्धित है। किसी भी भाषा की अपेक्षा संस्कृत भाषा में भावों-विचारों की अभिव्यक्ति

के लिए सूक्ष्मता, स्पष्टता, तार्किकता जैसे गुण अधिक हैं। पाणिनी के अष्टाध्यायी के पहले चौदह सूत्रों में संस्कृत वर्णमाला का संयोजन अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से किया गया। वाल्मीकि, व्यास, पाणिनी, पतंजलि (वार्तिक), गौतम (न्याय सिद्धांत के विचारक), कपिल (सांख्य दर्शन के प्रवर्तक), जैमिनि (मीमांसा सूत्रकार), आर्यभट्ट, वराहमिहिर, चरक, सुश्रुत, कौटिल्य, शंकराचार्य आदि महान व्यक्तित्वों ने संस्कृत में एक से बढ़कर एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे जिनसे जीवन और जगत के अनेकानेक क्षेत्रों के रहस्यों का उद्घाटन संभव हुआ। अनुवाद के माध्यम से विश्व ऐसे ज्ञानालोक से लाभान्वित होता रहा है।

13.2 मध्यकाल

आज जिसे हम मध्यकाल कहते हैं वह मानव इतिहास एवं सभ्यता के विकास के सम्बन्ध में उन्नीसवी सदी में विकसित हुई अवधारणा है जिसे ज्यों का त्यों पूरे विश्व में समान रूप में लागू करना कठिन है। फिर भी, मोटे तौर से, इतिहास की गति को समझने-समझाने के लिए इसका सहारा लिया जाता है। यह प्राचीन और आधुनिक काल के बीच अवस्थित समय है। इस बात पर विवाद है कि इसे तीसरी, चौथी या पाँचवीं - किस ई. सन् से प्रारंभ माना जाए। फिर भी, आम तौर पर, यूरोप में रोम साम्राज्य की समाप्ति (410 ई.) से मध्यकाल का आरंभ और तुर्कों के कुस्तुंतुनिया पर अधिकार (1453 ई.) अथवा पुनर्जागरण काल (1500) तक इसकी सीमा निर्धारित की जाती है। मध्यकाल का महत्त्व इस बात को लेकर है कि इस काल में सामाजिक, धार्मिक एवं राजसत्तात्मक संस्थाओं का व्यापक विस्तार हुआ।

भारत में मध्यकाल का समय आठवीं और अठारहवीं सदियों के बीच माना जाता है। इस कालावधि में समाज, भाषा, धर्म, नीति, कानून, कलाओं आदि के स्वरूप परिवर्तन परिलक्षित हुए थे। इसी समय आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ। पूर्व मध्यकाल (आठवीं से तेरहवीं सदी) में साहित्य-लेखन भोजपत्रों/ताड़पत्रों पर होता था परन्तु तेरहवीं सदी से यह कागज पर होने लगा। मध्यकाल के आरंभ में अरब में इस्लाम धर्म के आधार पर समाज और राजसत्ता का बड़ा बोलबाला रहा। अफ्रीका और पश्चिमी एशिया के बड़े भूभाग पर उसका अधिकार हुआ। यूरोप के अंधकार युग (Dark Age: पाँचवीं से ग्यारहवीं सदी) में सामन्तवाद फला-फूला। यूरोप, अरब, चीन तथा अन्य दक्षिण पूर्वेशियाई देशों से भारत व्यापारिक सम्बन्धों की मार्फत जुड़ा और साथ ही उनके परस्पर प्रभाव को भी महसूस करता रहा। इसमें विदेशी आक्रमणों की भी खासी भूमिका थी। देशी राजा भी राज्य-स्थापन और राज्य-विस्तार के लिए परस्पर युद्ध किया करते थे। सामाजिक जीवन की गतिविधियों में धर्म की सक्रिय मौजूदगी होती थी। मंदिर लोगों के इकट्ठा होने से लेकर विचार-विनिमय करने, पूजा-पाठ करने से लेकर शिक्षा प्राप्त करने के स्थान होते थे। मंदिर-प्रांगण की पाठशालाओं में संस्कृत भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा के माध्यम से भी छात्र ज्ञान प्राप्त करते थे। दक्षिण भारत में मंदिर के शिक्षालयों में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम का प्रयोग हुआ करता था। फलतः इन भाषाओं पर संस्कृत का गहरा प्रभाव पड़ा - संस्कृत की शब्द-संपदा इन भाषाओं में पहुँची। संस्कृत में रचे हुए साहित्य को इन भाषाओं द्वारा भारी लोकप्रियता मिली। कम्बन ने तमिल में रामायण की रचना की। महाभारत और रामायण को तेलुगु में नन्नय, तिकन्ना, पोतन्ना आदि ने प्रस्तुत किया। कन्नड़ साहित्य के त्रिरत्न - पम्प, रन्न और पौन्न - ने उत्तम कोटि का साहित्य रचा। मलयालम में 'कृष्णगाथा' (आठवीं सदी), 'रामचरितम्' (बारहवीं सदी), 'कण्णश्श रामायणम्' जैसी अनेक श्रेष्ठ (Classic) कृतियाँ महाभारत, रामायण आदि के आधार पर रची गई।। उत्तर भारत में हर्षवर्धन के समय वाणभट्ट - जैसे संस्कृत के महत्त्वपूर्ण साहित्यकार हुए थे। चौहानों के शासनकाल में चन्दवरदायी ने पृथ्वीराज रासो – जैसे महाकाव्य की रचना की। इसी काल में महमूद गजनी जैसे आक्रान्ताओं ने अनेक मन्दिरों को लूटा और उनका ध्वंस किया। दूसरी ओर फिरदौसी ने उसी के आश्रय में 'शाहनामा' की रचना की और उसी की प्रेरणा से अलबरूनी भारत आया था और यहाँ आकर उसने भारतीय सामाजिक जीवन से सम्बन्धित पुस्तक लिखी।

उत्तर भारत में नालन्दा और विक्रमशिला – जैसे विश्वविद्यालय थे। गणित, आयुर्वेद, ज्योतिष, संस्कृत, दर्शन आदि-सम्बन्धी ज्ञान के बड़े केन्द्र थे। संस्कृत में अत्यंत लोकप्रिय पुस्तक 'कथा सरित्सागर', विल्हण की 'विक्रमांक देव चरित', कल्हण की इतिहास-पुस्तक 'राजतरंगिणी' और जयदेव की गीत कविता 'गीतगोविन्द' मध्यकाल की वैसी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं जिनके खूब अनुवाद होते रहे। उत्तर भारत में संस्कृत विद्वानों की भाषा थी पर आम जनता

की भाषा अपभ्रंश थी। इसी काल में बांग्ला, ओड़िया, गुजराती, मराठी आदि आधुनिक भारतीय भाषाएँ अपना रूप ग्रहण कर रही थीं।

दिल्ली सल्तनत में अपने समय में संस्कृत के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अरबी-फारसी में तर्जुमा कराया गया था। बाद में सूफी संतों और महात्माओं ने देश की जनता के बीच प्रेम और भक्ति का काव्यात्मक संदेश देने के क्रम में अरबी-फारसी को देश के विभिन्न भागों की भाषाओं से जोड़ा। गुलबर्ग के गेसूदराज, गुजरात के शाहआलम बुखारी, सिलहट के शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी, मुलतान के बहाउद्दीन जकरिया और दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया, अमीर खुसरो आदि ने भाषा और साहित्य की बड़ी सेवा की। महाराष्ट्र के सन्त ज्ञानेश्वर ने मराठी में गीता लिखी। तुकाराम, नामदेव, कबीर, जायसी, नानक आदि ने जहाँ मौलिक काव्य रचे वहीं तुलसी, सूर, नन्ददास-प्रभृति कवियों ने रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत पुराण-आदि संस्कृत ग्रंथों को उपजीव्य बनाया। मध्यकाल की बड़ी विशेषता यह रही कि वेद, उपनिषद, पुराण, महाभारत, रामायण आदि संस्कृत ग्रंथों की सामग्री क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध हो गई। अकबर के जमाने तक रामायण और महाभारत का फारसी में अनुवाद हो चुका था। 'अकबरनामा' के लेखक अबुल फजल ने उन अनुवादों की भूमिका लिखी थी।

13.3 आधुनिक भारतीय भाषाएँ

एक भाषा से दूसरी भाषा के निकलने तथा उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व ग्रहण करने में सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं। व्याकरण-सम्मत भाषा शिक्षितों और विद्वानों के बीच की व्यवहार-भाषा बनती तो है पर शिक्षा से वंचित आम जनता से वह दूर होने लगती है। कालान्तर में वही सामान्य जनता जिस टूटी-फूटी भाषा का उपयोग करती रहती है उसका भी व्याकरण तैयार हो जाता है क्योंकि जीवन-सापेक्ष साहित्य उस भाषा में उतरता है। इस तरह एक नई भाषा का जन्म और विकास होता है। वैदिक संस्कृत से आधुनिक भाषाओं के सामने आने में हजारों वर्ष लगे। वैदिक संस्कृत (1500 ईसा पूर्व) से संस्कृत (600 ई.पू.), फिर प्राकृत (200 ई. से 600 ई.), फिर अपभ्रंश (600 ई. से 1100 ई.) और अवहट्ठ (1100 ई.-1300 ई.) तथा विभिन्न अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाओं (1100 ई. 1600 ई. तथा जारी) का विकास हुआ।

भाषा-विकास की प्रवृत्ति क्रमशः जटिलता से सरलता की ओर होती है। संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत, प्राकृत की अपेक्षा अपभ्रंश और अपभ्रंश की अपेक्षा आधुनिक भाषाएँ व्याकरणिक और ध्वन्यात्मक रूप से सरलतर मानी जाती हैं। देश की सीमा के अन्तर्गत विभिन्न भाषा-परिवारों की भाषाएँ भी एक दूसरे से परस्पर प्रभावित होती रही हैं। द्रविड़ परिवार की तथा मुन्डारी आदि जैसी भाषाओं का भी संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं पर प्रभाव पड़ा है।

अपभ्रंश काल के पश्चात् अर्थात् 1000 ई. के बाद से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का, और सही मायनों में आज की प्रचलित द्रविड़ परिवार की भाषाओं का भी, विकास हुआ। मोटे तौर पर इस विकास का पहला चरण 1000 ई. से 1400 ई. तक देखा जा सकता है। जिसके रूप 'प्राकृत पैंगलम', 'पृथ्वीराज रासो', 'संगम साहित्य' आदि में नजर आते हैं। भारतीय आर्य भाषाओं को उत्तरी, मध्य देशी, पश्चिमी, दक्षिणी और पूर्वी में वर्गीकृत करके भी देखा जाता है। उत्तरी के अन्तर्गत सिन्धी, लहँदा और पंजाबी आती हैं, माध्य देशी में पश्चिमी हिन्दी, पश्चिमी के अन्तर्गत गुजराती और राजस्थानी, दक्षिणी में मराठी, और पूर्वी के अन्तर्गत बांग्ला, असमिया, मैथिली, मगही, पूर्वी हिन्दी और ओड़िया भाषाएँ हैं। इस प्रकार भारत की लगभग सभी भाषाएँ और उनका साहित्य प्रायः समान रिक्थ को लेकर चलने वाले तथा परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करने वाले भी रहे हैं। मध्यकाल में जो श्रेष्ठ वाङ्मय रचा गया उसका लाभ देशी भाषाओं को ही नहीं, विदेशी भाषाओं को भी मिलता रहा है।

13.4 अनुवाद का अर्थ और आशय

आज 'अनुवाद' से हम जो समझते हैं, आरंभ से उसका वही अर्थ और आशय नहीं रहा है, बल्कि वह बदलता और विकसित होता रहा है। पहले दार्शनिक स्तर पर अनुवाद की अत्यंत विस्तृत अवधारणा बताई गई थी। उसके अनुसार कोई भी भाषा अपने आप में ही अनुवाद है क्योंकि यह वाचिक या लिखित रूप में हमारे मन में उठने वाले भावों, विचारों और चिंतन का अनुधावन अनुगमन (अनु वदति इति अनुवाद) करती है, फिर एक ही भाषा

में लिखी/कही गई बात को दूसरे ढंग से बताने का प्रयास भी अनुवाद के ही विस्तृत दायरे में रखा जा सकता है। वेदों-पुराणों-उपनिषदों-ब्राह्मणों-आरण्यकों आदि की संस्कृत में ही की गई। टीकाओं, व्याख्याओं और भाष्यों को भी इसी अवधारणा के दायरे में रखा गया। बहुत बाद में चलकर ही अनुवाद का सम्बन्ध दो भिन्न भाषाओं से जोड़ा अर्थात् एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में प्रस्तुत किया जाना। इस प्रस्तुतीकरण के कई रूप हो सकते हैं जिन्हें शब्दानुवाद, भावानुवाद, छायानुवाद आदि के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया।

इक्कीसवीं सदी तक आते-आते अनुवाद-अध्ययन एक व्यापक विषय का रूप ले चुका है। परन्तु आरंभ में अनुवाद और मौलिकता के बीच सीमा-रेखाएँ स्पष्ट नहीं होती थीं – अनुवादक की मौलिकता भी उसके (अनुवद) 'लेखन' में सुरक्षित रहती थी और उसका अपना व्यक्तित्व भी बरकरार रहता था। उन दिनों अनुवाद को मूल के प्रति ऐकान्तिक निष्ठा या पूरी वफादारी के रूप में नहीं देखा जाता था, बल्कि कृति के आधार पर एक नयी कृति निर्मित की जाती थी। उन्नीसवीं सदी से अनुवाद को एक स्वतंत्र विषय के रूप में देखने की प्रक्रिया आरंभ हुई। अनुवाद से क्या आशय है, इसका स्वरूप क्या हो - इस बारे में पर्याप्त विवाद रहा। अनुवादक के लिए मूल का शब्दार्थ ग्रहण करना उचित है या भावार्थ, अनुवाद शाब्दिक/शब्दशः होने चाहिए या मुक्त, काव्यानुवाद को असंभव मानकर छोड़ देना चाहिए या इसे अनिवार्य समझकर संभव बनाने का प्रयास करना चाहिए, अनुवाद में अनुवादक की सत्ता विलीन हो जानी चाहिए या बरकरार रहनी चाहिए - आदि प्रश्नों से जो अनुवाद-चर्चा आरंभ हुई उसे 'विवाद-युग' (Period of debate) भी कह सकते हैं। विद्वानों के विचार-विमर्श के पश्चात् धीरे-धीरे विवादों का शमन होता गया और इससे जैसी स्थिति बनी उसे 'समझ का युग' (Period of understanding) समझ सकते हैं। अब भाषा, मानव मन, संस्कृति, समाज आदि के अन्तः सम्बन्धों को गहराई से जानने-समझने की कोशिश हुई। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से अनुवाद के अनेक ढंग और अधिगम (approaches) सामने आए, जैसे रूपवादी (Formalist), प्रजननिक (Generative), तार्किक, व्यतिरेकी (Contrastive), साहित्यिक (Literary), काव्यात्मक (Poetic), अर्थ वैज्ञानिक, व्याकरणिक आदि। यह ऐसा बहुलवादी समय है जब कहा जा सकता है कि अनुवाद की कोई एक निश्चित और पूर्व-निर्धारित पद्धति नहीं हो सकती और हर प्रकार के अनुवाद का लक्ष्य सटीक अनुवाद प्राप्त करना है।

अनुवाद के इसी बहुलतावादी परिप्रेक्ष्य में मध्यकालीन कालजयी ग्रंथों को आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत किए जाने को देखना उचित है। संस्कृत ग्रंथों के आधार पर विभिन्न भाषाओं में रचित अनेकानेक मौलिक ग्रंथ भी हमें मिलते हैं, जिन्हें अनुवाद की व्यापक अवधारणा के अन्तर्गत परखा जाना चाहिए। साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि संस्कृत कृतियों के देशी तथा विदेशी भाषाओं में प्रभूत मात्र में 'सजग' अनुवाद भी होते रहे हैं।

13.5 विभिन्न अनुवादों का परिचय

मध्यकाल के श्रेण्य ग्रंथ अनेक विषयों से सम्बन्धित हैं और गद्य की अपेक्षा पद्य में अधिक रचे गए हैं। काव्य के अलावा दर्शन, धर्म, न्याय, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष आदि अनेकानेक विषयों में उच्चकोटि के ग्रंथ हमें उपलब्ध होते हैं। पुराण, उपनिषद् और महाकाव्यों, नाटकों, कथाओं आदि के अतिरिक्त भी नाट्यशास्त्र (भरत मुनि), काव्यशास्त्र (रस, रीति, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति और औचित्य के छह संप्रदायों के अनेक ग्रंथ) से लेकर अर्थशास्त्र (कौटिल्य अर्थात् चाणक्य) जैसे अनेक शिखर ग्रंथों के अनुवाद आधुनिक उपनिषद् भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत होते रहे हैं।

आदि कवि वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, वाणभट्ट, भवभूति, जयदेव आदि श्रेष्ठ साहित्यसृष्टाओं का अमर साहित्य समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं की विरासत बना है। इनके साथ ही सभी भाषाओं में जैन, बौद्ध, शैव, शाक्त, नाथ आदि के दर्शन एवं काव्य की समृद्ध सम्पदा भी पहुँची है। संपूर्ण भारतवर्ष में भाषाओं की भिन्नता के बावजूद, इसलिए भी, साहित्य की समान प्रेरणा-उत्तेजना रही है और उनमें समान प्राणधारा प्रवाहित मिलती है। वीरता, भक्ति, वैष्णव काव्य, रहस्य, प्रेमाख्यान, रीति आदि की परम्पराएं सभी भाषाओं के साहित्य में समान समयों में उपस्थित दिखाई देती हैं। यहाँ विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं में संस्कृत कालजयी ग्रंथों की अनुवादात्मक प्रस्तुति का जायजा लेना समीचीन होगा।

तमिल साहित्य

संस्कृत काव्यरूपों एवं जैन तथा बौद्ध काव्यों के प्रभाव में 1000 ई. के आसपास तमिल का साहित्य विकसित हुआ। महाकवि कम्बन ने वाल्मीकि रामायण की कथा को उपजीव्य बनाकर 'कम्ब रामायणम्' महाकाव्य की रचना की। यह वाल्मीकि रामायण का यथावत् अनुवाद नहीं है। कम्बन की मौलिक प्रतिभा रचना की काव्यात्मकता में स्थान-स्थान पर विशेष रूप से प्रकट होती है। बाद में चलकर तमिल गद्य में रामायण का 'रामायणट्टुरा कण्टककतै' नाम से अनुवाद हुआ। 1901 से 1912 के बीच एस. एम. नटेश शास्त्री ने छह खण्डों में रामायण का तमिल अनुवाद प्रस्तुत किया। 1825 में मराठी से तमिल में 'पंचतंतिरककतै' अनूदित हुआ। महाभारत के कई अनुवाद भी तमिल में हुए जिनमें देसिक तातायारियर का संपूर्ण महाभारत (1880) अनुवाद विशिष्ट है। तमिल में संस्कृत के अनेक पुराणों के अनुवाद हुए यथा कूर्म पुराणम्, काशी काण्डम आदि। रोचक तथ्य है कि वहाँ कई पुराण ग्रंथों की रचना हुई, जैसे सेतु पुराणम्, तिरुप्परंगिरिपुराणम्, कांचिप्पुराणम्, हरिश्चन्द्र पुराणम् आदि जिनमें कई में वहाँ के देवी-देवताओं का वर्णन किया गया। अरसकसरिया नामक कवि ने कालिदास-कृत रघुवंशम् को तमिल में अनूदित किया। शैव मठों में धर्म, दर्शन, काव्य से सम्बन्धित रचनाओं का अध्ययन, पठन-पाठन और टीकाओं का प्रणयन होता था।

आधुनिक युग में अरुणाचल कविरियार ने संस्कृत के मत्स्य पुराण का तमिल में 'मच्छपुराणम्' नाम से पद्यात्मक अनुवाद किया। स्वामी वेदाचलम 'मरमलइअडिगल' ने कालिदास की प्रसिद्ध कृति अभिज्ञान शाकुन्तलम् का परिष्कृत तमिल भाषा में बढ़िया अनुवाद प्रस्तुत किया। तमिल के प्रख्यात कवि सुब्रह्मण्य भारती ने महाभारत की एक कथा विशेष को आधार बनाकर 'पांचाली शब्दम्' नामक काव्य की रचना की थी। दूसरी तरफ तमिल के श्रेण्य ग्रंथों यथा 'तिरुक्कुरल', 'दिव्य प्रबंधम्', 'पेरियापुराणम्', 'तिरुवाचगम्' आदि के अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हुए।

तेलुगु

तेलुगु में भी 11वीं सदी से साहित्यिक कृतियाँ मिलती हैं। सच कहा जाए तो तेलुगु के पहले रचनाकार नन्नय (1022-63) थे जो तेलुगु में महाभारत के पहले अनुवादकर्त्ता थे। कहा जाता है कि राजामंड्री के चालुक्य नरेश राजराज नरेन्द्र ने अपने राजकवि नन्नय को व्यास-कृत संस्कृत महाभारत का तेलुगु अनुवाद करने का आदेश दिया। नन्नय ने अपने मित्र नारायण भट्ट के सहयोग से इस योजना पर कार्य किया, परन्तु उसे पूरा न कर सके। फिर भी वे तीन पर्वों - आदि पर्व, सभा पर्व और अरण्य अथवा वन पर्व (अपूर्ण) के अनुवाद करने में सक्षम हुए। बाद में 13वीं सदी में नेल्लूरवासी कवि तिक्कन ने विराट पर्व से आगे के बाकी पन्द्रह पर्वों का अनुवाद किया। वन पर्व अब भी अपूर्ण था जिसे 14वीं सदी में जाकर कहीं कवि एर्रना ने पूरा किया। एर्रन ने अपने काव्य 'नृसिंह पुराण' में लिखा है कि नन्नय और तिक्कन इसलिए वन्दनीय हैं क्योंकि उन्होंने महाभारत के रूपान्तरण के माध्यम से वेदव्यास द्वारा प्रतिपादित हिन्दू धर्म को और महाभारत के सच्चे रहस्य को तेलुगु जनता के आगे रखा जिससे तब तक वह वंचित थी। इन रूपान्तरकारों ने अपनी-अपनी काव्यात्मक क्षमता का भी यथेष्ट परिचय दिया है। नन्नय के अनुवाद में संस्कृत शब्दावली का बाहुल्य है तो तिक्कन के अनुवाद में तेलुगुपन विशेष है।

12वीं सदी के लगभग नन्निचोड ने 'कुमार संभव' नामक प्रबंधकाव्य की रचना की, जिसकी सामग्री के लिए कवि ने वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, उद्भट आदि संस्कृत कवियों का आभार माना। उन दिनों तेलुगु काव्य की दो शैलियाँ विकसित हो रही थीं - देशी (तेलुगु शब्द-प्रधान भाषा) और मार्गी (संस्कृत निष्ठ भाषा)। तेलुगु क्षेत्र में महाभारत की अपेक्षा रामायण की लोकप्रियता अधिक थी, इसके प्रमाण रामकथा को आधार बना कर रची गई। गद्य-पद्य की शताधिक रचनाएँ हैं। इनमें सबसे पहला और विख्यात ग्रंथ रंगनाथ रामायण है जिसका प्रणेता गोनबुद्ध रेड्डी को माना जाता है। इसका रचनाकाल तेरहवीं सदी है। वाल्मीकि रामायण के आधार पर रचे होने के बावजूद यह एक ऐसी स्वतंत्र रचना है जिसमें कई प्रसंग अलग से डाले गए हैं। संस्कृत वृत्तों और तेलुगु छन्दों में रचित 'भास्कर रामायण' एक प्रसिद्ध चम्पू काव्य है, जिसकी भाषा-शैली में मिलने वाली भिन्नताओं के चलते उसे चार कवियों द्वारा रचित बताया जाता है जिनके नाम हैं - भास्कर, मल्लिकार्जुन भट्ट, कुमार रुद्रदेव और अय्यलार्य।

बाणभट्ट की कादम्बरी का स्वतंत्र रूपान्तरण केतन ने किया जो कवि तिकन्न के चाचा बताए जाते हैं। एक अन्य लेखक प्रणय केतन ने संस्कृत के प्रसिद्ध न्याय ग्रंथ 'मिताक्षरा टीका' का विज्ञानेश्वरीयम् नाम से अनुवाद प्रस्तुत किया था। उसने दशकुमार चरितम् (दण्डी) का पद्यानुवाद भी किया। मरय मंत्रि ने मार्कण्डेय पुराण का तेलुगु अनुवाद किया। चौदहवीं सदी में नाचन सोम ने हरिवंश पुराण का अनुवाद किया जिसकी विद्वत्ता और काव्यात्मक सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए विजयनगर के राजा ने उसे पुरस्कारों के साथ-साथ सर्वज्ञ की उपाधि प्रदान की थी। 14-15वीं सदी में ही वशिष्ठ रामायण और पद्म पुराण के तेलुगु अनुवाद मडिकिसिंगन द्वारा किए गए। इसी काल में बम्मेर पोतन ने भागवत का अत्यंत काव्यात्मक एवं हृदयस्पर्शी अनुवाद किया जिसे धर्मग्रंथ-सा दर्जा मिला।

संस्कृत, प्राकृत, तेलुगु आदि भाषाओं के विद्वान श्रीनाथ ने अनेक संस्कृत ग्रंथों के तेलुगु अनुवाद किए। नैशध काव्यम्, काशीखंडम्, हरविलासम्, भीमेश्वर पुराणम् आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। लगभग इसी समय वीरभद्र ने महाभारत तथा अभिज्ञानशाकुन्तल के समन्वित आधार पर 'शकुन्तला परिणयम्' की रचना की थी। जैमिनी-कृत 'अश्वमेघ पर्व' का अनुवाद वीरभद्र ने 'जैमिनीभारतम्' के नाम से किया।

गुंट नारायण ने तेलुगु में संस्कृत की प्रसिद्ध कथाकृति 'पंचतंत्रम्' का अनुवाद किया जिसकी सरल भाषा, सूक्तियों और कथाओं ने तेलुगु जनता का मन मोह लिया। इस प्रकार 10वीं से 15वीं सदी के कालखंड को तेलुगु साहित्य में अनुवाद काल भी कहा जा सकता है, यद्यपि अनुवाद और मूलाधारित रूपांतरण की प्रवृत्तियाँ आगे भी चलती रहीं।

सोलहवीं सदी के कवि पेद्दन ने मार्कण्डेयपुराण के आख्यान के आधार पर स्वारोचिश मनुसंभवम् या मनुचरित्र महाकाव्य की रचना की। मूल आख्यान का अनुसरणात्मक अनुवाद मारन ने किया था। हरिवंश के एक आख्यान पर आधारित एक सरस लोकप्रिय काव्य की रचना नन्दि तिम्मन ने की थी। 17वीं-18वीं सदियों में कई ध्यान खींचने वाले अनुवाद हुए। भर्तृहरि के नीतिशतक का एक अनुवाद पुष्पगिरि तिम्मन ने और दूसरा अनुवाद एनुगु लक्ष्मण ने किया। उत्तर रामचरित पर आधारित काव्य की रचना कंकटि पापराजु ने की। 19वीं-20वीं सदियों में तेलुगु भाषा में विविध विषयों से सम्बन्धित तरह-तरह के अनुवाद प्रस्तुत होते रहे। मध्यकालीन श्रेण्य रचनाओं में देवी भागवतम्, बुद्धचरित्र, नरकासुर व्यायोगम् आदि के अनुवाद तिरुपति वेंकटेश्वर कवि युग्म तथा रामकृष्ण शास्त्री द्वारा किए गए। व्यासमूर्त्ति शास्त्री ने महाभारत का अनुवाद महाभारत-नवनीतम् नाम से किया। प्राकृत के प्रसिद्ध महाकाव्य सेतुबंध का अनुवाद वेंकटरमणाचार्युलु ने किया। कालिदास के प्रसिद्ध काव्य मेघदूत का अच्छा अनुवाद के. वेंकटराम शास्त्री ने किया। के. वेंकटाचलम ने प्रसन्न राघव का अनुवाद आंध्रप्रसन्नराघवम् के नाम से प्रस्तुत किया। उन्होंने जिन अन्य अनेक संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रंथों के तेलुगु अनुवाद किए उनमें साहित्यदर्पण, अभिज्ञानशाकुन्तल, रत्नावली, नागानन्द, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, उत्तररामचरित मुख्य हैं। देवी भागवत तथा अभिज्ञान शाकुन्तल का बढ़िया अनुवाद दासु श्रीराम कवि ने किया। शंखायन शर्मा ने उत्तर रामचरित के अनेक अंशों का गद्यानुवाद किया। जनमंचि वेंकटरामय्या ने मालती माधव-सहित संस्कृत के अनेक नाटकों के अनुवाद किए। सत्रहवीं सदी में ही रत्नावली का अनुवाद 'मित्रविन्दा गोविन्दु' नाम से हुआ था। हालांकि अभिज्ञानशाकुन्तल के तेलुगु में दर्जनों अनुवाद हुए परन्तु वीरेशलिंगम के अनुवाद को बेजोड़ माना जाता है। के. रंगाचारी ने जातक कथाओं के रूपान्तरण किए। प्रसिद्ध कवि श्रीपाद कृष्णमूर्त्ति शास्त्री, जो 1950 में 'आंध्र राजकवि' बनाए गए थे अपने अनेक अनुवादों के लिए भी विशेष रूप से जाने जाते हैं। उन्होंने वाल्मीकि रामायण, महाभारत औ भागवत-जैसे श्रेण्य ग्रंथों के तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत किए। इसी तरह जनमंचि शेषाद्रि शर्मा ने संस्कृत के दर्जन काव्यग्रंथों के अनुवाद किए। त्रिपुराण वेंकट सूर्यप्रसाद राव द्वारा अनूदित अनेक संस्कृत काव्यों के अनुवादों कुमार संभव और मेघदूत (मेघ संदेशम्) सर्वप्रमुख हैं जो अपने छनद और माधुर्य के लिए याद किए जाते हैं अभिज्ञानशाकुन्तल का दुर्भा सुब्रह्मण्य शास्त्री द्वारा किया गया तेलुगु अनुवाद मूल के प्रति अत्यन्त निष्ठावान रह है। शास्त्री ने शंकराचार्य के 'विवेक चूड़ामणि' तथा 'सौन्दर्य लहरी' का भी बड़ा ही सुन्दर काव्यात्मक अनुवा किया। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित विश्वनाथ सत्यनारायण का प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामायण कल्पवृक्षमु' रामायण प ही आधारित था।

आधुनिक काल में तेलुगु में संस्कृत के अलावा अंग्रेजी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं से भी प्रभूत मात्रा में अनुव हुए और हो रहे हैं। महाभारत का अनुवाद रेवण सिद्धेश्वर वेंकटाचार्य ने किया। श्रीमद्भगवतगीता का तेल अनुवाद कंकम्मा और द्रोणम राजलक्ष्मी बायम्मा ने किया। रावूरि वेंकटसुबम्मा ने राजशेखर-कृत 'कर्पूरमंजरी' [illegible] नारायणदास ने उमर खय्याम की रूबाइयों का 'पानशाला' नाम से तेलुगु में अनुवाद किय

कन्नड़

कहा जाता है कि कर्णाट प्रदेश (आधुनिक कर्नाटक) के विद्वान दुर्विनीत (जिन्हें गंगराजा नामक शासक '482-522 ई.' भी बताया जाता है) ने गुणाढ्य की पैशाची भाषा की रचना 'बुड्ढकथा' का 'बृहदकथा' के नाम से संस्कृत में अनुवाद किया था और भारवि कें प्रसिद्ध संस्कृत काव्य 'किरातार्जुनीयम्' के पन्द्रहवें सर्ग पर भाष्य भी लिखा था। पर कन्नड़ भाषा में साहित्य का प्रारंभ नौवीं सदी के बाद ही हुआ। पंप (प्रथम) ने महाभारत पर आधारित काव्य 'विक्रमार्जुनविजयम्' की रचना की जिसे 'पंपभारत' भी कहा जाता है। उन्होंने 'आदिपुराण' भी लिखा। बारहवीं सदी के कवि अभिनव पंप उर्फ पंप द्वितीय ने वाल्मीकि रामायण पर आधारित 'रामचरित्रपुराण' लिखा जिसे पंप रामायण के नाम से भी जाना जाता है। कन्नड़ की आंरभिक कृतियाँ अधिकतर रामायण और महाभारत पर ही आधारित मिलती हैं। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दियों में यह सिलसिला और भी जोर पकड़ता गया और रामायण और भागवत के अच्छे अनुवाद हुए। मैसूर राज्य के राजाओं ने अपने संरक्षण में विद्वानों को संस्कृत ग्रंथों के संस्कृतनिष्ठ कन्नड़ में अनुवाद करने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप हितोपदेश, पंचतंत्र, शाकुन्तल, उत्तर रामचरित, वेणीसंहार आदि के कन्नड़ अनुवाद प्रस्तुत हुए। करिवसवशास्त्री (मैसूर) और तूरमणि (धाराड) ने अभिज्ञानशाकुन्तल के कन्नड़ में दो ऐसे अनुवाद किए जिन्हें कुछ लोग आधुनिक कन्नड़ का आदि ग्रंथ भी बताते हैं। संस्कृत के अनुवादकों में धोण्डी नरसिंह मुलबागल का नाम भी विशेष रूप से लिया जाता है। महाभारत की कन्नड़ में परमदेव ने 'तुरंग भारत' नाम से पुनर्रचना प्रस्तुत की। कन्नड़ के प्रसिद्ध साहित्यकार बेन्द्रे ने 1943 में मेघदूत का कन्नड़ अनुवाद प्रकाशित किया था। श्रेष्ठ आधुनिक कन्नड़ कवि और ज्ञानपीठ पुरस्कार-विजेता कु.वें. पुटप्पा द्वारा संपूर्ण राम कथा की प्रस्तुति को बड़ी प्रसिद्धि मिली। कृष्ण शास्त्री ने महाभारत और कथा सरित्सागर के महत्त्वपूर्ण अनुवादों द्वारा आधुनिक कन्नड़ साहित्य को समृद्ध किया है।

मलयालम

कहा जाता है कि दसवीं सदी तक मलयालम भाषा अपना स्वरूप ग्रहण कर चुकी थी। 12वीं शताब्दी में कौटिल्य के अर्थशास्त्र का मलयालम अनुवाद हुआ था- पुस्तक के पन्द्रह में से सात अध्याय उपलब्ध हुए हैं। कई विद्वानों की मान्यता है कि बारहवीं सदी के रामायण के युद्धकाण्ड पर आधारित कृति 'रामचरितम्' मलयालम की आरंभिक कृति है, जिसकी भाषा तमिल और मलयालम का कृत्रिम मिश्रण प्रस्तुत करती है। राम पणिक्कर-कृत 'कण्णाश रामायणम्' अत्यंत प्रसिद्ध हुई, जिसका रचनाकाल अनुमानतः पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी हो सकता है। रामायण आधारित इस कृति की काव्यात्मकता निर्विवाद है। लेकिन पन्द्रहवीं सदी की रचना 'कृष्णगाथा' में लगभग आधुनिक स्वरूप वाली मलयालम से मिलती-जुलती भाषा का इस्तेमाल होना विस्मयजनमक ही कहा जाएगा। यह कृति भागवत का अनुवाद और रूपान्तर दोनों है जिसमें कृष्ण के संपूर्ण जीवन की कथा अभिव्यक्त हुई है। इसी प्रकार महाभारत के आधार पर मलयालम में 'भारतगाथा' की रचना की गई। तमिल की भाँति मलयालम की भी 'मणिप्रवालम्' शैली (संस्कृत और मलयालम के मिश्रण वाली भाषा) विख्यात है।

मलयालम में कालिदास के मेघदूत पर आधारित अनेक संदेश-काव्य भी रचे गए जिनमें चौदहवीं सदी का रचना 'उण्णुनीलिसंदेशम्' का विशिष्ट स्थान है। अन्य संस्कृत रचनाओं पर आधारित चम्पू और गद्य रचनाओं का प्रणयन 15वीं-18वीं के बीच हुआ जिनमें सुन्दरकाण्डम्, भगवद्गीतागद्यम्, भागवतम् के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सोलहवीं सदी के कवि एजुत्तचन ने अध्यात्म रामायण,' भारतम् और भागवतम् जैसी रचनाएँ कीं। ये तीनों क्रमशः वाल्मीकि रामायण, व्यास-कृत महाभारत तथा भागवत पुराण के रूपान्तरण हैं।

मलयालम मणिप्रवालम शैली में रामायण चम्पू तथा भारत चम्पू रचे गए। जयदेव-कृत गीतगोविन्द के आधार पर कृष्णनाट्यम् लिखा गया। कहा जाता है कि केरल की विश्व-प्रसिद्ध नृत्य-नाट्य संरचना कथकलि के पीछे गीतगोविन्द की ही प्रेरणा रही है। कथकलि अभिनय-प्रधान नाटक है तो आट्टकथा नाटकों में कथा की प्रधानता होती है। रामानाट्टम, कृष्णनाट्टम, नलचरितम् दक्षयागम, उत्तरा स्वयंवर, कीचकवधम आदि आट्टकथाओं का लेखन संस्कृत की कालजयी रचनाओं के आधार पर हुआ और यह परम्परा आधुनिक युग तक जारी रही है। वल्लतोल नारायणर मेनन ने वाल्मीकि रामायण का बढ़िया अनुवाद किया। अम्बरीशोपाख्यानम्, नलोपाख्यानम, दूतवाक्यम (महाभारत के उद्योग पर्व पर आधारित), मयूर संदेशम (19वीं सदी में केरल वर्मा-कृत) आदि संस्कृत ग्रंथों पर आधारित रचनाएँ हैं। 1944 में जी. शंकर कुरुप ने मेघदूत का

मराठी

मराठी में बारहवीं सदी से गद्य-पद्य की विधाओं में साहित्य समृद्ध होने लगा था जिसका बड़ा भाग संस्कृत की रचनाओं के आधार पर लिखा गया था। न केवल रामायण, कृष्णचरित्र, पंचतंत्र-सरीखे पौराणिक गाथाओं से सम्बन्धित साहित्य, बल्कि आयुर्वेद, ज्योतिष आदि विषयों से सम्बन्धित संस्कृत ग्रंथों के आधार पर भी साहित्य प्रस्तुत किया गया था। महानुभाव सम्प्रदाय से जुड़े कवियों ने कृष्ण चरित् से सम्बन्धित वच्छहरण, रुक्मिणी, शिशुपाल वध, उद्धवगीता, ज्ञानप्रबोध-जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की थी। तेरहवीं सदी में ज्ञानदेव ने भगवद्गीता की ज्ञानेश्वरी टीका 'भावार्थ दीपिका' प्रस्तुत की थी। उनके पदचिह्नों पर चलने वाले एकनाथ ने भागवत के ग्यारहवें स्कंध की टीका लिखी थी। बाद में चल कर वामन पंडित ने गीता पर अपनी टीका 'यथार्थ दीपिका' के नाम से लिखी। उन्होंने संस्कृत ग्रंथों और पुराण कथाओं पर आधारित कई ग्रंथ यथा, सीता स्वयंवर, गजेन्द्रमोक्ष, वेणुसुधा जैसे काव्यग्रंथ लिखे। रघुनाथ पंडित ने नल-दमयन्ती स्वयंवर की रचना की। श्रीधर ने हरिविजय, रामविजय, पांडवप्रताप, शिवलीलामृत-सरीखे भक्ति के काव्यात्मक आख्यान प्रस्तुत किए। मोरोपन्त (मयूर कवि) ने कृष्ण विजय और मंत्रभागवत तथा रामकथा से सम्बन्धित शताधिक रूपान्तर भी किए थे।

अठारहवीं सदी के अन्त में मोरोपन्त ने महाभारत का रूपान्तर किया जिसे मराठी का पहला महाकाव्यात्मक ग्रंथ माना जाता है। तत्पश्चात् उन्नीसवीं सदी में पंचतंत्र, हितोपदेश, सिंहालनत्रितिका के अनुवादक हुए। आधुनिक काल में बलवन्त पाण्डुरंग (अन्नासाहेब) किर्लोस्कर ने रामायण और महाभारत कथा को उपजीव्य बनाकर रामराज्य (अपूर्ण), सौभद्र, शाकुन्तल (कालिदास के नाटक का अनुवाद) आदि नाटक लिखे। 1928-30 में काशीनाथ वामन लेले ने तीन भागों में रामायण का मराठी अनुवाद किया। शुद्रक-कृत मृच्छकटिकम् का ग. ब. देवल द्वारा किए गए अनुवाद को भी सराहा गया। देवल ने कादम्बरी आख्यायिका के आधार पर एक नाटक लिखा। कृ.प्र. खाडिलकर ने पौराणिक कथा के माध्यम से अपने समय के समाज और राजनीति पर गहरे कटाक्ष किए। कीचक वध उनका ऐसा ही नाटक था। रघुवंश, ऋतुसंहार, मृच्छकटिक, उत्तररामचरित आदि रचनाओं के मराठी अनुवाद कर चिपलूणकर, पारखी, लेले कृष्णशास्त्री जैसे कवियों ने ख्याति प्राप्त की। देशपाण्डे, केलकर, जोग-सरीखे समालोचकों ने संस्कृत काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की व्याख्याएं प्रस्तुत कीं।

असमिया

वामनपुराण की एक उपकथा पर आधारित तेरहवीं सदी के कवि हेमसरस्वती की कृति 'प्रह्लाद चरित' को असमिया की सबसे पहली पुस्तक माना जाता है। उनकी अन्य रचना 'हरगौरी संवाद' पर कालिदास के 'कुमारसंभव' का गाढ़ा प्रभाव है। विप्रहरि कवि ने रामायण पर आधारित 'लवकुश युद्ध' और महाभारत पर आधारित 'बभ्रुवाहनन युद्ध' की रचना की। कविरत्न सरस्वती ने महाभारत के द्रोणपर्व का अनुवाद किया। दुर्गावर कायस्थ ने गीतिरामायण की रचना की थी। असमिया में रामायण का रूपान्तरण माधव कन्दलि ने किया था जिसे आम जनता में लोकप्रियता मिली थी।

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में महाभारत के एक अंश का अनुवाद (स्वर्गारोहण पर्व) प्रकाशित हुआ। शंकरदेव ने श्रीमद्भागवत पुराण के बारह स्कंधों में से दशम स्कंध समेत आठ स्कंधों का मधुर काव्यात्मक अनुवाद किया। हिन्दी कवि कुतुबन और मंझन के प्रेमाख्यानकों, क्रमशः मृगावती और मधुमालती के भी असमिया अनुवाद हुए थे। 1919 में कुंडेश्वर ठाकुर ने मेघदूत का असमिया अनुवाद प्रकाशित किया था। आधुनिक काल में विशेषकर बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में, पौरणिक विषयों को लेकर नाटकों की रचनाएं हुईं जिनमें 'सीताहरणनाट' (रमाकांत चौधरी), 'श्रीरामचन्द्र', 'कुरुक्षेत्र' (अतुल चंद्र हजारिका) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अन्य विधाओं में भी पुराणों, संस्कृत महाकाव्यों, जातकों, पंचतंत्र आदि को उपजीव्य बनाकर रचनाएं की गईं।

ओड़िया

स्वतंत्र एवं पूर्ण भाषा के रूप में ओड़िया का विकास चौदहवीं सदी के अंत तक हो चुका था। उसी सदी के, संस्कृ भाषा से अनभिज्ञ किंतु प्रसिद्ध कृषक कवि सरलादास ने महाभारत महाकाव्य की रचना कर जनजीवन को प्रेरि किया था। उन्होंने वाल्मीकि रामायण की कथा में मौलिकता भर कर 'विलंका रामायण' की रचना भी की [illegible] अनुवाद हुए। बलराम दास ने ओड़ि

रामायण और जगन्नाथ दास ने श्रीमद्भागवत का प्रणयन किया। भागवत पुराण का एक प्रामाणिक ओड़िया अनुवाद अच्युतानन्द दास द्वारा भी हुआ। जगन्नाथ दास के ओड़िया भागवत को तो इतनी ख्याति और लोकप्रियता मिली कि उस काव्य को ओड़िया लोगों की बाइबिल कहा जाने लगा। जयदेव के 'गीतगोविन्द' का ओड़िया काव्य-रचना पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। मध्यकाल के प्रसिद्ध कवि उपेन्द्र भंज ने रामायणीकथा का अवलंबन कर काव्यरचना की। अभिमन्यु सामन्तसिंह और दीन कृष्णदास जैसे कवियों ने राधा – कृष्ण प्रेमाख्यानक को आधार बनाकर गीतिकाव्यों का लेखन किया। कवि भक्त चरणदास ने 'मथुरामंगल' काव्य में ब्रजवासी गोप-गोपियों की विरहाकुलता के करुणार्द्र चित्र खींचे। वैष्णव भक्तकवि गोपाल – कृष्ण ने राधाकृष्ण प्रेम के मधुर और मर्मस्पर्शी गीत रचे।

आधुनिक युग में ओड़िया के प्रख्यात साहित्यकार फकीरमोहन सेनापति ने रामायण और महाभारत दोनों ही महाकाव्यों के ओड़िया में अनुवाद किए। राजा कृष्णसिंह ने भी ओड़िया में महाभारत का रूपान्तरण किया जो पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। प्रसिद्ध कवि राधानाथ ने कालिदास के मेघदूत को ओड़िया में अनूदित किया।

बांग्ला

बांग्ला में साहित्य-रचना का आरंभ जिस चर्यापद और वैष्णवगीति से माना जाता है उसे हिन्दू एवं बौद्ध संस्कृतियों के सुखद मेल के रूप में देख सकते हैं। जयदेव के 'गीतगोविन्द' का बड़ा ही व्यापक प्रभाव बांग्ला काव्य पर पड़ा और गीति काव्य की तीव्र धारा प्रवहमान हुई। चंडीदास (पदालीकार और प्रबंधात्मक रचना 'श्री कृष्णकीर्तन' के रचनाकार) ने श्रीमद्भागवत की कथात्मकता को गीतों की मिठास देकर मौलिक रूप में बांग्ला में प्रस्तुत किया। चर्यापदों और विद्यापति पर हिन्दी और बांग्ला भाषाएँ अपना अधिकार मानती हैं। मैथिली और बांग्ला के मेल से बांग्ला में एक ब्रजबुलि नाम की भाषा का विधान हुआ माना जाता है। अन्य भारतीय भाषाओं की भांति बांग्ला में भी मध्यकाल में संस्कृत काव्यों के खूब अनुवाद हुए। पन्द्रहवीं सदी में बांग्ला रामायण के नाम से लोकप्रिय कृत्तिवास ओझा का काव्य ऐसे ही रूपान्तरण का सफल प्रयत्न था, जिसमें अनेक रामायणों की कथा के साथ मौलिक उद्भावनाओं का भी हाथ था। मालाधर बसु ने भागवत के कृष्णलीला वाले भाग का रूपान्तरण 'श्री कृष्ण विजय काव्य' या (गोविन्द विजय) के नाम से किया। सोलहवीं सदी के भागवत के बांग्ला अनुवादकों में माधव आचार्य, श्यामदास, रघुनाथ पंडित आदि प्रमुख हैं।

मध्यकाल में सैकड़ों बंगाली कवियों ने राधा-कृष्ण प्रेम के मधुर गीत गाए जो भागवत पुराण पर आधारित थे। वस्तुतः रामायण और महाभारत के अनेकानेक अनुवाद बांग्ला में प्रस्तुत किए गए थे। रामकथा को विषय बनाकर सर्वप्रथम कृत्तिवास ने रामायण की रचना की जो कवित्व और लोकप्रियता की दृष्टियों से उच्च कोटि का काव्य है। सोलहवीं से अठारहवीं सदियों के बीच कृत्तिवास की अनुवाद-परम्परा को आगे बढ़ाने वालों में शष्ठीवर सेन, गंगादास सेन, अद्भुताचार्य, चंद्रावती, कविचंद्र – जैसे कवि सामने आए। कवीन्द्र परमेश्वर ने सोलहवीं सदी में 'पांडव विजय' की रचना महाभारत के आधार पर की। जैमिनी महाभारत के 'अश्वमेघ' नामक अध्याय का संस्कृत से बांग्ला में अनुवाद श्रीकर नन्दी ने किया। अठारहवीं सदी तक महाभारत के कोई तीन दर्जन बांग्ला अनुवाद हुए, जिनमें काशीरामदास के महाभारत को अपूर्व लोकप्रियता मिली। संस्कृत के मार्कण्डेयपुराण का स्थानीयकरण करते हुए बांग्ला में चंडी मनसा मंगल काव्यों की भरमार हो गई थी। पुराणों के आधार पर शैवकाव्य भी रचे गए। सत्रहवीं सदी में सैय्यद अलाओल ने मलिक मुहम्मद जायसी के विख्यात हिन्दी महाकाव्य 'पदमावत्' का सफल बांग्ला अनुवाद किया था।

अठारहवीं सदी के आरंभ में संस्कृत से हितोपदेश, पंचतंत्र, सिंहासन द्वात्रिंशतिका-जैसी रचनाओं के बांग्ला अनुवाद हुए। विद्यापति की संस्कृत पुस्तक 'पुरुष परीक्षा' का भी बांग्ला अनुवाद हुआ। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में राम, कृष्ण, शिव आदि से सम्बन्धित सांस्कृतिक-धार्मिक विषयों पर बांग्ला में खूब पांचाली रचे गए। राजा राममोहन राय ने 1815 से 1819 के बीच वेदान्त ग्रंथ और ईश, केन, माण्डूक्य, कठ तथा मुण्डक उपनिषदों के बांग्ला में अनुवाद किए। संस्कृत के सात विद्वानों के सहयोग से कालीप्रसन्न सिंह ने संपूर्ण महाभारत का अनुवाद प्रकाशित किया था। 1854 में ताराशंकर तर्करत्न ने बाणभट्ट की 'कादम्बरी' का बांग्ला गद्य में अनुवाद किया था। हरिदास सिद्धांतवागीश ने 1931 में महाभारत का अनुवाद प्रकाशित किया था। उन्नीसवीं सदी में ही माइकेल मधुसूदन दत्त ने रामायण कथा के एक अंश के ब्याज से 'मेघनादवध' नामक प्रसिद्ध महाकाव्य की रचना की। माइकोल ने

महाभारत/भागवत की कथा पर आधारित राधाकृष्ण के प्रेम को लेकर 'ब्रजांगना' काव्य की रचना की जिसका हिन्दी अनुवाद मैथिलीशरण गुप्त ने 'विरहिनी ब्रजांगना' नाम से किया। वृत्रासुर-वध की पौराणिक कथा के आधार पर हेमचन्द्र ने वृत्रसंहार काव्य की रचना की। नवीनचन्द्र सेन् ने महाभारत कथा को उपजीव्य बनाकर रैवतक, कुरुक्षेत्र और प्रभास-जैसे काव्य लिखे जिनके नायक कृष्ण थे। मदनमोहन तर्कालंकार ने सुबंधु की कृति 'स्वप्नवासवदत्ता' का गद्यानुवाद बांग्ला में किया। महाभारत, गीता आदि के आधार पर बंकिमचंद्र ने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'श्रीकृष्ण चरित्र' का लेखन किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कबीर और विद्यापति की कतिपय रचनाओं के काव्यानुवाद किए थे।

गुजराती

गुजराती साहित्य पर संस्कृत और प्राकृत भाषा एवं साहित्य का व्यापक प्रभाव पड़ा है। तेरहवीं-चौदहवीं सदी से गुजरात के रचनाकार संस्कृत में मौलिक लेखन करने के साथ-साथ संस्कृत ग्रंथों पर भाष्य भी रचते रहे। गुजराती के आदि कवि नरसी मेहता (पंद्रहवी सदी) ने महाभारत कथा को आधार बनाकर 'सुदामाचरित्' नामक प्रसिद्ध काव्य लिखा। कृष्ण प्रेम की दीवानी प्रसिद्ध कवयित्री मीरांबाई को गुजराती कवियों में भी शुमार किया जाता है। गुजराती के एक प्रसिद्ध कवि मालण (सोलहवीं सदी) की अनेक रचनाओं के शीर्षकों से ही पता चल जाता है कि उनके स्रोत संस्कृत के प्रख्यात ग्रंथ रहे हैं, यथा-दशम स्कंध, राम बाल चरित्, नलाख्यान, कादम्बरी। सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में नाकर, विष्णुदास, नयसुन्दर आदि कवियों ने रामायण, महाभारत, पुराणों आदि के आधार पर काव्य रचे। इनके पश्चात् प्रेमानन्द ने अपनी प्रतिभा और परिश्रम से इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए नलाख्यान, रणयज्ञ, अभिमन्यु आख्यान, सुदामा चरित्र, दशम स्कंध-जैसे दर्जनों काव्य रचे। रणछोड़जी दीवान ने 'दुर्गासप्तशती' का गुजराती में अनुवाद किया। गुजराती में भागवत का रत्नेश्वर ने और रामायण का गिरधर ने अच्छा अनुवाद प्रस्तुत किया। गिरधर ने राजसूययज्ञ, अश्वमेघ, कृष्णलीला-जैसे काव्य भी लिखे। प्रसिद्ध राजनेता, संस्कृतकर्मी और साहित्यकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने श्रीमद्भगवतगीता की आधुनिक व्याख्या की और महाभारत और कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित उपन्यासों की रचना की। उनका 'भगवान परशुराम' पौराणिक विषय पर आधारित उपन्यास है। संस्कृत अनुवादों की लोकप्रियता का एक अन्दाजा इस बात से भी हो सकता है कि नन्दलाल दलपत राम ने 1924 में मेघदूत के अपने गुजराती अनुवाद का तीसरा संस्करण प्रकाशित कर लिया था।

पंजाबी

पंजाबी साहित्य में संस्कृत से अनुवाद, भाष्य आदि सत्रहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी के बीच खूब हुए और इस क्रम में रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद् आदि इस भाषा में प्रस्तुत किए गए। विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवतगीता, योगवशिष्ठ, भागवत पुराण, पद्मपुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि के अतिरिक्त देवी भागवत, हिंगल पुराण, वैराग्य शतक, बेताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी-सरीखी रचनाएं अनुवादित हुईं। सिक्खों के दशवें गुरु गोविन्द सिंह अच्छे कवि भी थे। उन्होंने रामकथा और कृष्णकथा-जैसे काव्यों की रचना रामायण और महाभारत के आधार पर की। बाद में चल कर अठारहवीं सदी में कृष्णलाल ने महाभारत का पद्यानुवाद पंजाबी में किया। कालिदास नामक कवि ने 'रामायण' की रचना की। सेनापति नामक रचनाकार ने चाणक्यनीति का पंजाबी पद्य में अनुवाद किया। दारा शिकोह द्वारा कराए गए उपनिषदों के फारसी अनुवाद से प्रह्लाद नाम के लेखक ने हिन्दी-पंजाबी-मिश्रित गद्य भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया। पंजाबी में संस्कृत आख्यानों के आधार पर प्रेमाख्यानक काव्यों की भी अनेक रचनाएं हुई जिनमें नल-दमयन्ती, उर्वशी, तिलोत्तमा, देवयानी आदि प्रेमकथाएं उल्लेखनीय हैं।

हिंदवी या उर्दू-हिन्दी

इन भाषाओं का आरंभ 12वीं-17वीं सदी के मध्य हुआ माना जाता है, रेख्ता की मिली-जुली भाषा में उन दिनों काव्य-रचना होती थी अर्थात् एक पंक्ति फारसी तो दूसरी हिन्दी। सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में दक्खिनी हिन्दी/उर्दू में अनेक पौराणिक आख्यानों की शैली के प्रभाव में रचनाएं की गईं। जैसी 'शुक-सप्तति' के आधार पर गवासी ने 'तोतीनामा' लिखा था। अठारहवीं सदी में उर्दू में बाइबिल और कुरान के अनुवाद किए गए।

विद्यापति ने हिन्दी में कृष्णकाव्य की परम्परा डाली। मीराबाई ने 'गीत-गोविन्द की टीका' लिखी। तुलसी ने रामकथा पर आधारित रामचरित मानस, बरवै रामायण और कृष्णणकथा पर आधारित कृष्णगीतावली की रचना

की। अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण के जीवन और प्रेम से सम्बन्धित काव्य रचे जिनमें सूरसागर (सूरदास), रासपंचाध्यायी (नन्ददास) सर्वश्रेष्ठ हैं। संस्कृत ग्रंथ प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक से प्रभावित होकर केशवदास ने रामचन्द्रिका की रचना की। हृदयराम ने संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' का अनुवाद 'भाषा हनुमन्नाटक' नाम से किया। अठारहवीं सदी में पद्माकर ने हितोपदेश का अनुवाद किया। इसी सदी के आरंभ में अक्षर अनन्य ने 'दुर्गासप्तशती' का हिन्दी में अनुवाद किया और साथ ही सिद्धांतबोध, ब्रह्मज्ञान, विवेकदीपिका, विज्ञानयोग, राजयोग-जैसे वेदान्त पर आधारित ग्रंथ भी लिखे। रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योगवशिष्ठ' के रूप में योगवशिष्ठ का सुन्दर अनुवाद किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने धनंजय विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्राराक्षस जैसे संस्कृत नाटक हिन्दी में अनूदित किए। लक्ष्मण ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् का तत्सम-प्रधान हिन्दी में बढ़िया अनुवाद किया था। संस्कृत के उत्तररामचरित, मालतीमाधव, मालविकाग्निमित्र, मृच्छकटिक, नागानंद आदि के हिन्दी अनुवाद लाला सीताराम ने प्रस्तुत किए थे। ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'वेणी संहार' का अनुवाद किया। 1917 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मेघदूतम् का हिन्दी अनुवाद किया था। 1927 में द्वारका प्रसाद शर्मा ने दस भागों में रामायण का अनुवाद प्रकाशित किया। वस्तुतः हिन्दी साहित्य पर संस्कृत रामायण एवं महाभारत का व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ा जो निरंतर बना रहा है। जगन्नाथ दास रत्नाकर (भ्रमरगीत), सत्यनारायण कविरत्न (उद्धवशतक), हरिऔध (प्रिय-प्रवास और वैदेही-वनवास), मैथिलीशरण गुप्त (जयभारत, प्रदक्षिणा, जयद्रथवध, साकेत), दिनकर (कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, उर्वशी) आदि कवियों ने विशेष रूप से इन दोनों ही परम्पराओं का विकास किया। संस्कृत के लगभग सभी प्रसिद्ध काव्य, नाटक व अन्य विधाओं के ग्रंथ हिन्दी में अनूदित हो चुके हैं और अब भी हो रहे हैं। शाकुन्तल, मेघदूत, मृच्छकटिक आदि लोकप्रिय कृतियों के तो कई-कई अनुवाद हुए हैं। प्रसिद्ध हिन्दी कवि नागार्जुन ने मेघदूत और विद्यापति के गीतों का अत्यंत प्रभावशाली काव्यात्मक अनुवाद किया।

अन्य भारतीय भाषाएँ

अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य भी संस्कृत कालजयी ग्रंथों के अनुवाद की प्रवृत्ति के अपवाद नहीं रहे। सबमें संस्कृत से रूपांतरण का काम चलता रहा है। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में मणिपुरी में बांग्ला भाषा की मार्फत महाभारत के एक पर्व का अनुवाद किया गया था। उन्नीसवीं सदी में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज में संस्कृत और फारसी की अनेक कृतियों के अनुवाद बांग्ला, हिन्दी, उर्दू और मराठी में कराए गए थे। लल्लूजी लाल ने भागवत का ब्रज/हिन्दी में अनुवाद किया था। हितोपदेश, पंचतंत्र, सिंहासन बत्तीसी आदि हिन्दी अनुवाद भी हुए थे।

नेपाली में भानुभक्त आचार्य ने संस्कृत ग्रंथ अध्यात्म रामायण का अनुवाद किया। उनके समकालीन रघुनाथ भट्ट ने भी इसी ग्रंथ का अनुवाद किया। 1931 में होमनाथ सुब्बा ने 'महाभारतमूल' नाम से महाभारत का नेपाली अनुवाद प्रस्तुत किया। कालिदास के मेघदूत का 1930 में कमलनाथ अधिकारी ने नेपाली में और 1937 में परमानंद दत्त ने मैथिली में अनुवाद किया। मैथिली में अन्दा झा ने 'मिथिला भाषा रामायण' के नाम से रामायण की पुनर्रचना की। कश्मीरी में प्रकाशराम ने रामायण की कथा लिखी। हरिवंश पुराण के आधार पर इस भाषा में 'वाणासुरकथा' की रचना हुई। मानजी सूरी ने 'कृष्णावतार' की रचना की। महर्षि अरविन्द ने विक्रमोर्वशीयम् का The hero and the nymph के नाम से अंग्रेजी में अनुवाद किया था।

13.6 सारांश

इस इकाई के माध्यम से हमने जाना कि संस्कृत के कालजयी ग्रंथ लगभग सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित हुए हैं। रामायण, पुराण, उपनिषद, श्रीमद्भागवत, महापुराण, भगवतगीता, काव्य, नाटक, आख्यायिका आदि के निरंतर अनुवाद संस्कृत से आधुनिक भाषाओं में होते रहे। ऐसा लगता है कि सभी भारतीय भाषाओं के लिए संस्कृत मानो साहित्यिक संपर्क का काम करती आई है। संपूर्ण देश की मिथकीय चेतना और सांस्कृतिक आत्मा की एकसूत्रता का निर्माण संस्कृत मूल के ग्रंथों और उनके अनुवादों के माध्यम से संभव होता रहा। भारत के मध्यकाल में आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्रचुर मात्रा में अनुवाद हुए और ये अनुवाद ही आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्भव का महत्वपूर्ण कारण बने। इसी क्रम में अनुवाद के कई रूप भी परिलक्षित हुए, यथा - संक्षेपीकरण,

रूपान्तरण, पुनर्गठन, पुनर्रचना, व्याख्या, भाष्य, भाषान्तरण, काव्यान्तरण, कथान्तरण, नाट्यरूपान्तरण, संगीतिक रूपान्तरण आदि।

अगली इकाई में हम आधुनिक भारतीय कालजयी साहित्य के आधुंनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

13.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. मध्यकाल से आपका क्या आशय है? विस्तार से समझाइए।
2. आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्‌भव का समय कब से माना जाता है?
3. आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्‌भव में अनुवाद भी क्या भूमिका हैं? समझाइए।
4. मध्यकाल में तमिल भाषा में हुए अनुवादों का परिचय दीजिए।
5. ओड़िया भाषा का उद्‌भव कहां से माना जाता है? उस समय के महत्वपूर्ण रचनाकारों के योगदान पर प्रकाश डालिए।
6. रामकथा पर आधारित बांग्ला साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Das, Sisir Kumar, 2001: *Indian Ode to the West Wind*, 'Goethe and India: Towards a World Literature', New Delhi, Pencraft International.
- Chandra, Bipin, (ed.) Reprint in 1986: *Modern India,* New Delhi, National Council of Educational Research and Training, First Published in 1971.
- Wintermitz, Maurice, 1904: *History of Indian Literature (Vol.1),* (A new authoritative translation from original German by V. Srinivasa Sarma), Motilal Banarsidas, 1981, Delhi, 'Introduction'.
- Haldar, Gopal, 2000: *Languages of India* (Translated into English from the Original Bangla by Tista Bagchi), New Delhi, National Book Trust, India.
- Das, Sisir Kumar,2001: *Indian Ode to the West Wind*, 'India, Halhed and the Early British Orientalism', New Delhi, Pencraft International.
- Sadiq, Muhammad, 1984: *A History of Urdu Literature*, Delhi, Oxford University Press.
- Das, Sisir Kumar, 1991: *A History of Indian Literature* (Vol. VIII): *1800-1910 Western Impact: Indian Response,* 'The Old Order: Stability and Change', New Delhi, Sahitya Akademi
- Das, Sisir Kumar, 1995: *A History of Indian Literature* (Vol. IX): 1911-1956: Struggle for Freedom: Triumph and Tragedy, New Delhi, Sahitya Akademi.
- Rice, Edward P., 1982: *A History of Kannada Literature*, (Second Ed. Rev & Enlarged), New Delhi, Asian Educational Services,.

इकाई 14 आधुनिक भारतीय कालजयी साहित्य का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 पाश्चात्य प्रभाव, आधुनिकता एवं भारतीय साहित्य

- 14.2.1 आधुनिकता
- 14.2.2 मुद्रण का प्रादुर्भाव
- 14.2.3 आधुनिक शिक्षा
- 14.2.4 अनुवाद कार्य

14.3 आधुनिक साहित्य एवं उपन्यास का विकास

14.4 आधुनिक भारतीय भाषाएँ

14.5 आधुनिक भारतीय कालजयी साहित्य एवं उनके अनुवाद

14.6 सारांश

14.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे :

- आधुनिक भारतीय साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव;
- आधुनिकता से तात्पर्य;
- आधुनिक भारतीय साहित्य तथा उपन्यास का विकास; और
- आधुनिक भारतीय कालजयी साहित्य एवं उनके अनुवाद।

14.1 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों में आप भारतीय प्राचीन एवं मध्यकालीन कालजयी साहित्य के विषय में पढ़ चुके हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम आधुनिकता, भारतीय साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव तथा आधुनिक भारतीय कालजयी साहित्य की चर्चा करते हुए अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में उनके अनुवाद पर विचार करेंगे।

14.2 पाश्चात्य प्रभाव, आधुनिकता एवं भारतीय साहित्य

जैसा कि हम सब जानते हैं कि भारत पर सदियों तक विदेशी आधिपत्य रहा है। आर्यों को लेकर यह मतभेद रहा है। आर्य मूलतः भारतीय थे अथवा बाहर से आए थे, इसे लेकर विद्वानों के अलग-अलग मत रहे हैं। लेकिन अब आर्यों को लेकर भी यह तथ्य सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि आर्य मध्य एशिया से आए थे और उन्होंने यहां के मूल निवासियों को जंगलों की ओर खदेड़ दिया। अर्थात भारतीयता की शुरुआत से ही विदेशी भारत आते रहे हैं और भारत पर शासन करते रहे हैं। अरबों, तुर्कों, मुगलों और पश्चिमी देशों विशेषकर अंग्रेजों के भारत में प्रवेश ओर उनके शासनकाल के विषय में हम जानते ही हैं। किंतु भारतीय इतिहास में अंग्रेजों का आगमन एक विशेष स्थान रखता है। अंग्रेज भारत में मूलतः व्यापार के उद्देश्य से आए थे। वे भारत से माल

खरीदते और यूरोप के बाज़ार में बेचकर लाभ उठाते थे। किंतु व्यापार की आड़ में वे भारत की आर्थिक सम्पदा को लूट कर ब्रिटेन को समृद्ध करते रहे।

पश्चिम से आने वाले देशों में ब्रिटेन अकेला नहीं था। उससे पूर्व डच और पुर्तगाली भी भारत आए थे। लेकिन ब्रिटेन ने उन्हें यहां से बुरी तरह खदेड़ दिया। अंग्रेजों की भारत विजय अन्य शासकों से अलग थी। इस अंतर के क्या कारण थे, इसका उत्तर के. दामोदरन अपनी पुस्तक 'भारतीय चिन्तन परम्परा' में देते हैं, 'उस समय भारत में सामन्तवाद ही आधिपत्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था थी।' (दामोदरन : 2001) पहले के ये विदेशी विजेता उन एशियाई क्षेत्रों से आए थे, जिनकी अर्थव्यवस्था स्वयं पिछड़ी हुई थी और जहां सामंती अथवा अर्धसामंती सामाजिक ढांचा मौजूद था। फलतः वे भारतीय समाज के आधारभूत आर्थिक ढाँचे में कोई परिवर्तन करने में असमर्थ थे और उन्हें अपना जीवन अनिवार्यतः स्वयं भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप ढालना पड़ा।

'किंतु, इसके विपरीत, अंग्रेज उत्पादन क्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था के प्रतिनिधि थे, जो उस समय भारत में प्रचलित सामंती अर्थव्यवस्था से अधिक आगे बढ़ी हुई थी, अर्थात वे पूँजीवादी व्यवस्था के प्रतिनिधि थे। यही कारण है कि अंग्रेज, भारतीय आर्थिक व्यवस्था के मूलाधार में परिवर्तन कर सके।' (दामोदरन : 2001) स्पष्ट है कि ब्रिटिश अर्थव्यवस्था सामंती अर्थव्यवस्था न होकर औद्योगिक अर्थव्यवस्था या कहें कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था थी, जिसका प्रभाव भारत की अर्थव्यवस्था पर ही नहीं, राजनीति ओर समाज पर भी पड़ा।

अंग्रेजों ने भारत के उद्योग धन्धों को नुकसान पहुँचाया। उन्होंने भारत में तैयार सूती और रेशमी माल को अपने देश में आयात से रोका। उन्होंने उसके लिए कई हथकण्डे अपनाए। भारतीय बाजारों में मशीनों से तैयार कपड़े को सस्ते दामों पर बेचना शुरू किया और चूंकि भारत में कपड़ा हाथ से निर्मित होने के कारण अधिक लागत रखता था, भारत में देशी कपड़े की मांग कम होने लगी। यही नीति उन्होंने सभी उद्योग-धन्धों को ठप करने में अपनाई और देखते ही देखते भारत सस्ते विदेशी माल की मंडी में तब्दील होता चला गया। इसी प्रकार अंग्रेजों ने भारतीय कृषि व्यवस्था को चोट पहुँचाई, नई कर व्यवस्था लागू करने से छोटे किसान अपनी ज़मीन बेचने और गिरवी रखने को मजबूर हो गए। कृषि व्यवस्था टूटने लगी, किसान मजदूरों में तब्दील हुए, ग्राम समुदाय जो कि भारत की प्राण शक्ति थे, बिखरने लगे। कारीगरों के धंधे चौपट होने लगे। धीरे-धीरे भारत ब्रिटेन का एक ऐसा उपनिवेश बन कर रह गया, जिसका काम ब्रिटेन को कच्चे माल की आपूर्ति करना और वहां से आए सस्ते माल को एक बड़ा बाजार उपलब्ध करवाना था। किन्तु ब्रिटिश शासकों के उद्देश्य जो भी रहे हों, भारतीय जड़ और सामंती व्यवस्था पर उनके आक्रमण से ही कालान्तर में भारत आधुनिक प्रगति की ओर अग्रसर हुआ। के. दामोदरन अपनी पुस्तक 'भारतीय चिन्तन परम्परा' में मार्क्स के इस कथन को उद्धृत करते हैं, 'यह सच है कि हिंदुस्तान में इंग्लैण्ड ने निकृष्टतम उद्देश्यों से प्रेरित होकर सामाजिक क्रांति की और अपने उद्देश्यों को साधने का उसका तरीका भी बहुत मूर्खतापूर्ण था। किन्तु, प्रश्न यह नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या एशिया की सामाजिक अवस्था में एक बुनियादी क्रांति के बिना, मानव जाति अपने लक्ष्य तक पहुंच सकती है। यदि नहीं, तो मानना पड़ेगा कि इंग्लैण्ड के चाहे जो गुनाह रहे हों, उस क्रांति को लाने में वह इतिहास का एक अचेतन कारण था।' (दामोदरन : 2001)

हालांकि अंग्रेजों का उद्देश्य भारत को पूर्णतः अपना उपनिवेश बनाना ही था लेकिन धीरे-धीरे वे यह समझने लगे थे कि अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें कृषि, आवागमन के साधन, शिक्षा आदि में सुधार करना ही होगा। दूरदर्शी राजनीतिज्ञ यह समझने लगे कि भारत के बाज़ारों को विकसित करने के लिए आधुनिक शिक्षा और समाज सुधारों को लागू करना आवश्यक है। फलतः उन्होंने ईसाई मिशनरियों को भारत में प्रोत्साहन दिया। इसके माध्यम से वे भारतीयों में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति आस्था और सेवा भावना को बढ़ावा देना चाहते थे। 'धीरे-धीरे ईसाइयों को हिन्दुओं और मुसलमानों से श्रेष्ठ समझा जाने लगा और उन्हें विशेष रियायतें दी जाने लगीं। जिन सरकारी कर्मचारियों ने ईसाई धर्म को अपनाया, उनकी पदोन्नति कर दी गई। इस सबसे, स्वभावतः ही, भारत की जनता की, विशेषतः हिन्दुओं और मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को आघात पहुंचा।' (दामोदरन : 2001)

ईसाई मिशनरियों की समाज सुधारक नीतियों से भारतीय मन प्रभावित होने लगा। भारतीय जनता में सामाजिक चेतना का उदय हुआ। हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि उस समय जितने भी भारतीय समाज सुधारक हुए, उन्होंने ईसाई कॉलेजों से शिक्षा प्राप्त की तथा वे ईसाई मिशनरियों से प्राप्त शिक्षा का परिणाम हैं। यहीं से भारत में आधुनिकता की पदचाप सुनाई देने लगी थी।

14.2.1 आधुनिकता

आधुनिकता का प्रारंभ भारतीय संदर्भों में अंग्रेजों के भारत में प्रवेश से माना जाता है। आधुनिकता पर विचार करने से पूर्व यह समझना आवश्यक है कि आधुनिकता का वास्तव में अर्थ क्या है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार, 'सामान्य प्रयोग में 'आधुनिक' शब्द को बहुत दूर तक समय-सापेक्ष मान लिया जाता है। जैसे इतिहास का विभाजन प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक कालों में करते समय। परन्तु यह 'आधुनिक' शब्द का सामान्य, निष्पक्ष और लचीला अर्थ है, जिसके अनुसार हर अगला काल अपने पूर्ववर्ती की अपेक्षा आधुनिक या अधिक आधुनिक होता है। पर अपने विशिष्ट रूप में आधुनिक का अर्थ इससे भिन्न है। आधुनिकता की पहली और अनिवार्य शर्त स्वचेतनता है।' (हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, धीरेन्द्र वर्मा, तृतीय संस्करण) आधुनिकता की तुलना रोमांटिसिज्म से करते हुए आगे बताया गया है कि रोमांटिसिज्म में वर्तमान की चिंता सबसे कम हे जबकि आधुनिकता के केन्द्र में वर्तमान है। 'अपने वर्तमान के प्रति तीव्रतम सजगता आधुनिकता का केन्द्रीय तत्व है।' अपनी स्वचेतन वृत्ति के कारण आधुनिकता की प्रमुख चिंतना वर्तमान के लिए है क्योंकि 'स्व' का सबसे गहरा बोध और संपर्क वर्तमान में होता है।'

स्पष्ट है कि आधुनिकता से 'स्व' का बोध, वर्तमान की चिंता और भविष्य के प्रति सजगता होती है। भारत में आधुनिकता की शुरुआत अंग्रेजों के प्रवेश से मानी जाती है। उनकी नई चिंतन पद्धति, मनुष्य केन्द्रीयता और बुद्धि व तर्क को अधिक प्रश्रय देने की प्रवृत्ति ने भारत में आधुनिकता के बीज डाले, जिसके परिणाम स्वरूप भारत में सामाजिक सुधारों की शुरुआत हुई।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास में भारतीय संदर्भ में आधुनिक युगीन मानसिकता के लिए पुनर्जागरण या नवजागरण शब्द का इस्तेमाल करते हैं, 'मनुष्य की बुनियादी अवधारणा में यह परिवर्तन कैसे होता है, इसे समझने के लिए आधुनिक युगीन मानसिकता का व्यापक परीक्षण आवश्यक होगा। इस मानसिकता को सामान्य रूप से 'पुनर्जागरण' या 'नवजागरण' कह कर इतिहास और संस्कृति के संदर्भ पुकारा गया है।' (पृ. 79) रामस्वरूप चतुर्वेदी आगे इसे पारिभाषित करते हुए लिखते हैं- 'संक्षेप में पुनर्जागरण दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा है। (वही)' भारत के संदर्भ में यदि बात की जाए तो पुनर्जागरण अथवा कहें कि आधुनिकता की शुरुआत 19वीं शताब्दी में होती है।' (वही) नयी यूरोपीय वैज्ञानिक संस्कृति और पुरानी धार्मिक संस्कति की टकराहट के फलस्वरूप रामस्वरूप चतुर्वेदी भी के. दामोदरन की बात को ही पुष्ट करते हुए कहते हैं कि इस्लाम और भारतीय धर्म की टकराहट से किसी नवीन ऊर्जा की उत्पत्ति इसलिए नहीं हो पाई क्योंकि दोनों ही अपने-अपने ढंग की रूढियों में बंधी-धर्म प्रधान संस्कृतियाँ थीं। (वही, पृ.80)

स्पष्ट है कि व्यापक अर्थों में आधुनिकता से अभिप्राय आधुनिक विचारों तथा आधुनिक प्रयासों से है। आधुनिकता अथवा आधुनिक विचार परम्परागत विचारों का स्थान लेते हैं। किंतु आधुनिकता से हमारा अभिप्राय यहां भारत में आधुनिकता के प्रारम्भ से है। भारत में आधुनिकता की शुरुआत 19वीं शताब्दी से होती है, जहां से हम विचारों, चिंतन की पद्धति से लेकर जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन देखते हैं। साहित्य में भी यह परिवर्तन महत्वपूर्ण रूप से दिखाई देता है। नई तकनीक की शुरुआत, प्रेस का प्रादुर्भाव और बड़ी मात्रा में हुए अनुवाद कार्य ने भारतीय साहित्य के पूरे परिदृश्य को बदल दिया, जिस पर विस्तृत चर्चा आगे की जाएगी।

14.2.2 मुद्रण का प्रादुर्भाव

आधुनिकता की भारत को देन में नए विचार, नई शिक्षा, औद्योगिकीकरण के साथ-साथ प्रेस की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। आधुनिक विचारों और आधुनिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार प्रेस के बिना संभव नहीं था। सिसिर कुमार दास भारत में प्रेस की स्थापना की शुरुआत 1800 से मानते हैं। वे अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर के खण्ड 8 में लिखते हैं 'भारत में मुद्रण एवं प्रकाशन की शुरुआत सन् 1800 से ही मानी जानी चाहिए। ज्ञान एवं सूचना के प्रसार के माध्यम के रूप में प्रिंटिंग प्रेस अंततः स्थापित हो गई थी।' (पृ. 33) हालांकि इसी अध्याय में सिसिर कुमार दास भारत में प्रेस की स्थापना का विस्तृत ब्यौरा भी देते हैं। सीरमपुर में मिशनरियों जोशुआ मार्शमैन, विलियम वार्ड, विलियम कैरी के प्रयासों से 1800 ई. में प्रिंटिग प्रेस की स्थापना

हुई, जिसका मूल उद्देश्य बाइबल को विभिन्न भारतीय भाषाओं में मुद्रित करना था। इससे पूर्व सबसे पहली प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना 1554 में हुई जिसके बाद लम्बे समय तक इस क्षेत्र में कोई कार्य नहीं हुआ। सिसिर कुमार दास लिखते हैं, 'सीरमपुर मिशन प्रेस का प्रभाव बहुत दूरगामी था। इसने बाइबल के विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद तथा फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापकों द्वारा तैयार की गई पाठ्य पुस्तकें छापीं अपितु साहित्यिक पत्रिकाएं, समाचारपत्र तथा पिछली शताब्दी के कालजयी साहित्य भी छापे।' (पृ. 33) धीरे-धीरे देश के विभिन्न हिस्सों में प्रेस की स्थापना होने लगी जिनमें विभिन्न भारतीय भाषाओं में पुस्तकें, समाचार पत्र आदि छपने लगे जिसने भारत की मौखिक और हस्तलेखन की परम्परा को गहरे प्रभावित किया।

प्रेस की स्थापना ने लेखक और पाठक/श्रोता के सम्बन्ध को बदल कर रख दिया। मुद्रण की शुरुआत से ज्ञान के प्रसार की पद्धति में बड़ा बदलाव देखने को मिला। यह परिवर्तन सिर्फ ज्ञान के प्रसार की पद्धति तक सीमित नहीं था। अपितु मुद्रण की शुरुआत से सीमाओं में बंद ज्ञान खुलकर बाहर आने लगा। हस्तलिखित पांडुलिपियों की संख्या सीमित होने के कारण उसके पाठक सीमित हुआ करते थे और इसके पठन का अधिकार भी एक निश्चित वर्ग तक सीमित था। किंतु प्रिंटिंग की शुरुआत ने कालांतर में इस सामाजिक रूढ़ि पर तीखा प्रहार किया। अब उस पाठ के व्याख्याताओं की निरंकुशता टूटने लगी। यह परिवर्तन निश्चित तौर पर एक लम्बे समय का परिणाम था, किन्तु प्रिंटिंग प्रेस ने इसकी नींव अवश्य डाल दी थी।

श्रोता अब धीरे-धीरे पाठक में परिवर्तित हो रहे थे, जिसने धीरे ही सही लेकिन एक शिक्षित मध्य वर्ग की नींव डाली। शिक्षा का प्रचार-प्रसार अब व्यापक स्तर पर होने लगा। प्रेस और समाचार पत्र एक बड़े परिवर्तन का कारण बने। विचार-स्वातंत्र्य की नींव पड़ी। धीरे-धीरे ज्ञान के प्रसार की मौखिक पद्धति क्षीण पड़ने लगी। पुस्तकें अब पाठकों तक पहुँचने लगीं, जिससे ज्ञान विकेन्द्रित हो आम आदमी तक पहुँचने लगा।

भारतीय नवजागरण का यह काल भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रेस की स्थापना ने जहां ज्ञान को विकेन्द्रित किया वहीं विभिन्न भारतीय भाषाओं में पुस्तकें छपीं। इस युग में बड़ी मात्रा में अनुवाद कार्य भी हुआ, जो एक बड़े सामाजिक परिवर्तन का वाहक बना।

14.2.3 आधुनिक शिक्षा

प्राक् ब्रिटिश काल में भारत की शिक्षा व्यवस्था धर्म आधारित थी। हिंदू धर्म विभिन्न जातियों में बंटा था और केवल ब्राह्मणों को ही शिक्षा देने का एकमात्र अधिकार था। स्त्रियों और चतुर्वर्णों/दलितों आदि के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। इसी तरह मुस्लिम धर्म भी पुरानी रूढ़ियों से ग्रस्त था। यद्यपि मुसलमानों में शिक्षा पर किसी वर्ग विशेष का अधिकार तो नहीं था और मदरसों में कोई भी मुसलमान शिक्षा प्राप्त कर सकता था। लेकिन मुस्लिम शिक्षा व्यवस्था भी इस्लाम धर्म पर ही केन्द्रित थी। हिंदू और मुस्लिम धर्म में शिक्षा का माध्यम वे भाषाएँ थीं, जो आम जन की समझ से परे थीं। हिंदू धर्म में संस्कृत और मुस्लिम धर्म में अरबी भाषा उच्च शिक्षा का माध्यम थीं। 'दोनों ही शिक्षा पद्धतियाँ स्वतंत्र अन्वेषण की भावना के प्रतिकूल थीं।' (भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, ए.आर. देसाई, पृ. 112)

भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार का श्रेय ब्रिटिशों को जाता है। ईसाई मिशनरियों ने भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रसार के लिए बहुत कार्य किया। उनका मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार था। इन्होंने आधुनिक शिक्षा के प्रसार के लिए स्कूल खोले। इन स्कूलों में छात्रों को भारतीय धर्म के विपरीत धर्मनिरपेक्षता की शिक्षा दी जाती थी। साथ ही उन्हें ईसाई धर्म की ओर आकर्षित करने के प्रयास भी किए जाते थे। मूलतः ईसाई मिशनरियों का लक्ष्य था इन स्कूलों में दी जाने वाली आधुनिक शिक्षा के माध्यम से भारतीयों को ईसाई धर्म अपनाने की ओर प्रेरित करना किन्तु भारतीयों ने इन विद्यालयों से आधुनिक शिक्षा तो प्राप्त की, लेकिन बहुत कम ही लोग ईसाई धर्म में परिणत हुए। इस प्रकार ईसाई मिशनरियों के धार्मिक उद्देश्यों ने भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

ईसाई मिशनरियों द्वारा की गई शुरुआत को कालांतर में ब्रिटिश सरकार ने भी प्रोत्साहन दिया तथा इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए। उनके द्वारा खुलवाए गए स्कूलों और कॉलेजों से अनेक भारतीय शिक्षित हुए जिन्होंने

आगे चलकर बड़े-बड़े सामाजिक सुधार किए। आधुनिक शिक्षा को प्रोत्साहन देने के पीछे वस्तुतः अंग्रेजों का अपना स्वार्थ था। वे भारत में स्थापित ब्रिटिश उपनिवेश के सफल संचालन के लिए एक ऐसी शिक्षित फौज चाहते थे, जो कम आय में अंग्रेज अफसरों के अधीन रहकर काम कर सकें। लेकिन अंग्रेजों की इस स्वार्थपूर्ण नीति का भारतीयों ने लाभ उठाया। शिक्षित होकर इनमें से कई भारतीयों ने भारतीय समाज को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया। भारत में फैली कुप्रथाओं का विरोध किया। राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस आदि ऐसे ही समाज सुधारक थे।

आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार में प्रेस ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रेस के माध्यम से पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन होता और वे छात्रों को पहुंचाई जातीं। कालांतर में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त इन भारतीयों के प्रयासों से बड़े सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन हुए। हालांकि भारत में हुए समाज सुधारों का पूरा श्रेय अंग्रेजी और आधुनिक शिक्षा को देने सम्बन्धी भी कुछ मतभेद हैं।

इन शिक्षित भारतीयों ने न केवल समाज सुधार किए, अपितु राजनीतिक सुधार व आज़ादी के अपने हक के लिए भी बिगुल बजा दिया। 'शिक्षित भारतीयों ने अपने अंग्रेजी ज्ञान के कारण यूरोप के राजनीतिक साहित्य से जो अतिवादी राजनीतिक विचार ग्रहण किए उनके प्रचार से अंग्रेजी सरकार प्रायः संत्रस्त हो जाती थी।' (वही, पृ.:127)

14.2.4 अनुवाद कार्य

इस समय में अनुवाद कार्य भी भरपूर मात्रा में हुआ। सीरमपुर प्रेस की स्थापना, ईसाई मिशनरियों के प्रयास, फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना तथा शिक्षित भारतीयों ने भरपूर मात्रा में अनुवाद कार्य किए। अनुवाद की शुरुआत ईसाई मिशनरियों के प्रयास से हुई। बाइबल के अनुवाद के पीछे भारत में ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार का उद्देश्य था। आगे चलकर फोर्ट विलियम कॉलेज में संस्कृत से विभिन्न भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी आदि में प्रचुर मात्रा में अनुवाद कार्य हुए। किंतु लम्बे समय तक अनुवाद कार्य पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध करवाने के संदर्भ में होता रहा। सीरमपुर प्रेस में विभिन्न भारतीय भाषाओं में साहित्य तथा बाइबल आदि के अनुवाद छपते रहे।

कालांतर में शिक्षित भारतीयों ने अन्य भारतीयों को विदेशी ज्ञान से परिचित करवाने तथा राजनीतिक-सामाजिक सुधार के लिए विदेशी साहित्य का अनुवाद किया।

साहित्य की नई गद्य-विधाओं के प्रादुर्भाव के पीछे अनुवाद एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है। एसप के फेबल्स, बनयन का द पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस का विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद तथा रूपातंरण हुआ। फोर्ट विलियम कॉलेज द्वारा 1803 में प्रकाशित 'द ओरियंटल फेबलिस्ट' एसप के फेबल्स का ही बांग्ला, हिन्दी तथा उर्दू अनुवाद है। मराठी का बाल बोध मुक्तावली (1806) तथा बंगाली नीति कथा (1818) एसप के फेबल्स का रूपातंरण है।

इस समय में एक महत्वपूर्ण कार्य हुआ विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य का परस्पर अनुवाद। 1815 से 1819 के बीच राजा राममोहन राय ने वेदान्त ग्रंथ तथा पांच उपनिषदों का अनुवाद किया जिसका उद्देश्य तत्कालीन समाज को प्राचीन हिंदू धर्म से परिचित करवाना और समाज सुधार की पृष्ठभूमि तैयार करना था। इसके अतिरिक्त संस्कृत तथा पारसी से विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रचुर अनुवाद कार्य हुआ, जिसका विवरण आगे दिया जाएगा।

अंग्रेजी तथा फ्रेंच की रचनाओं का बांग्ला आदि भाषाओं में अनुवाद हुआ। डेनियल डेफो के रॉविन्सन क्रूसो का प्रचुर अनुवाद हुआ। श्यामचरण दास ने 'द फेयर पेनिटेंट' का बांग्ला में अनुतापिनी नभ कामिनी (1856) शीर्षक से अनुवाद किया। फ्रेंच रचना पॉल एट वर्जीनिया का अंग्रेजी के माध्यम से बांग्ला में पाल ओ वर्जीनिया इतिहास शीर्षक से अनुवाद हुआ। शेक्सपीयर और मिल्टन अनुवाद एवं रूपातंरण के माध्यम से भारत में अंगेजी के सर्वप्रिय लेखकों में शुमार किए। शेक्सपीयर के नाटकों के लगभग सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद एवं

रूपांतरण हुए। हरचंद्र घोष द्वारा मर्चेंट ऑफ वेनिस का भानुमति चित्त विलास (1853) शीर्षक से किया बांग्ला अनुवाद संभवतः पहला भारतीय अनुवाद था। इसी तरह मिल्टन का साहित्य भी अनुवाद के माध्यम से शिक्षित भारतीयों के लिए नया नहीं रह गया था।

अनुवाद के माध्यम ने ही भारत में आधुनिक साहित्य की नींव रखी। गद्य विधा की शुरुआत हुई। ईसाई मिशनरियों द्वारा करवाए गए अनुवाद तथा फोर्ट विलियम कॉलेज में हो रहे अनुवाद व आधुनिक शिक्षा की शुरुआत ने महसूस किया कि अब साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए पद्य काफी नहीं। धीरे-धीरे बहुत से धार्मिक ग्रंथों का गद्यानुवाद हुआ। पाठ्य पुस्तकें गद्य विधा में लिखी जाती थीं। गद्य के प्रमाण भारत में बहुत पूर्व से मिलने लगते है। अमीर खुसरो के यहां गद्य के नमूने देखे जा सकते है। लेकिन प्रामाणिक रूप से गद्य आधुनिक काल की देन है। राजा राममोहन राय ने वेदान्त और उपनिषदों के अनुवाद में बांग्ला गद्य का परिचय दिया, लेकिन वह गद्य बेहद संस्कृतनिष्ठ है।

भारत में गद्य की ठोस शुरुआत भी मूलतः विदेशी साहित्य के माध्यम से ही होती है। समाचार पत्रों-पत्रिकाओं का प्रकाशन, पाठ्य-पुस्तकें, अनुवाद आदि गद्य के माध्यम से हुए और होते-होते यह विधा आगे इतनी फली-फूली कि भारतीय साहित्य की पूरी तस्वीर ही बदल गई।

14.3 आधुनिक साहित्य एवं उपन्यास का विकास

आधुनिक साहित्य के दो मूलभूत तत्व रहे – गद्य की शुरुआत तथा साहित्य में नए विषयों का प्रवेश। आधुनिक काल भारतीय परिदृश्य में सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक बदलावों का समय था। समाज में जो सुधारवादी कार्य हुए, वे आगे चलकर साहित्य में भी परिलक्षित होने लगे। तत्कालीन लिखे अथवा अनूदित अधिकांश साहित्य के केन्द्र में सामाजिक एवं धार्मिक सुधार ही थे। राजा राममोहन राय ने भारतीयों को उनकी गौरवपूर्ण परम्परा से परिचित करवाने के लिए उपनिषदों का अनुवाद किया। रामायण, महाभारत और श्रीमदभागवत के आधुनिक काल में भी कई अनुवाद हुए। संस्कृत के नाटकों अभिज्ञानशाकुन्तल विक्रमोर्वशी, मृच्छकटिकम आदि का अनुवाद हुआ।

गद्य की शुरुआत तथा प्रेस के आगमन से भरपूर अनुवाद हुए तथा विदेशी साहित्य भारत में आने लगा। भारतीय स्वयं नई गद्य विधाओं की तलाश कर रहे थे। उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र, संस्मरण आदि विधाएं विदेशी अनुकरण पर आधारित थीं, जबकि निबन्ध जैसी नई विधा का जन्म तत्कालीन भारतीय पत्रकारिता की देन है। भारतेंदु के निबन्ध इसके उदाहरण हैं। नाटक और कविता – ये दो विधाएं भारतीय साहित्य में पहले से मौजूद थीं। लेकिन विदेशी साहित्य के अध्ययन ने इनके स्वरूप में परिवर्तन किया।

भारत में नाटक की एक समृद्ध परम्परा संस्कृत काल में रही लेकिन मुगलों द्वारा नाट्यसाहित्य को अधिक प्रश्रय न मिलने के कारण मध्यकाल में यह विधा विकसित न हो सकी। यद्यपि लोक साहित्य में नाटक की कई नई लोक विधाएं जन्मती रहीं जैसे – असम में अंकिया नाट, मिथिला में कीर्तनिया नाटक, बंगाल का जात्रा, उत्तर प्रदेश में नौंटकी, गुजरात का भवई, तमिलनाडु का तिरबट्टू आदि। आधुनिक काल में मूलतः संस्कृत काल के नाटकों पर ही विचार किया गया। आधुनिक थियेटर भारत की शास्त्रीय नाट्य परम्परा तथा पश्चिमी ग्रीक परम्परा का मिश्रण था। नाटक में त्रासदी का उदय हुआ। बांग्ला के प्रथम दो नाटक कीर्ति विलास तथा भद्रजन इसी परम्परागत भारतीय तथा पश्चिमी नाट्यविधा के मिश्रण थे।

इसी तरह कविता का रूपाकार भी बदल रहा था। माइकल मधुसूदन दत ने अपने यहां कविता में कई परिवर्तन किए। उनके दो महाकाव्य तिलोत्तमा संभव काव्य (1860) तथा मेघनाद वध काव्य (186) कविता पर पश्चिमी प्रभाव के उदाहरण हैं।

जीवनी, आत्मकथा तथा यात्रा वृतांत के कई उदाहरण यहां देखने को मिलते हैं। अन्य भाषाओं की तुलना में बांग्ला, मराठी तथा उर्दू में इन विधाओं की शुरुआत पहले हुई, लेकिन धीरे-धीरे सभी भाषाओं में विभिन्न गद्य विधाओं में साहित्य लिखा जाने लगा। सबसे सशक्त और महत्वपूर्ण गद्य विधा के रूप में यदि कोई विधा प्रचलित हुई, तो वह उपन्यास है। अंग्रेजी के नॉवल के अनुवाद उपन्यास को बांग्ला भाषा में कादम्बरी भी कहा जाता है। लेकिन उपन्यास के रूप में ही यह अधिक चर्चित हुआ।

उपन्यास का विकास

प्रारंभिक दौर में नाटक एक बेहद चर्चित विधा के रूप में विकसित हुआ। लेकिन धीरे-धीरे एक अन्य गद्य विधा पाठकों के बीच चर्चित हुई और वह थी - उपन्यास। और 1885 तक आते-आते उपन्यास ने सबसे अधिक प्रसिद्धि हासिल की।

1858 में टेकचंद ठाकुर का पहला बांग्ला उपन्यास अलालेर धरेर दुलाल प्रकाशित हुआ। यहीं से उपन्यास की शुरुआत हुई। हालांकि यह उपन्यास उपदेश प्रधान उपन्यास है। किन्तु आलोचकों/समीक्षकों ने इसकी भाषा, शैली और प्रस्तुति के कारण विस्तृत चर्चा की। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसका गद्य संस्कृत से लगभग मुक्त था तथा लेखक ने चरित्र गढ़ने में देशज शब्दों, बोली आदि का सुंदर प्रयोग किया। इसी के आसपास मराठी में समकालीन समस्या पर आधारित उपन्यास 'यमुना प्रयत्न' प्रकाशित हुआ। 1861 में लक्ष्मण मोरेश्वर हाल्बे का उपन्यास मुक्तमाला प्रकाशित हुआ, जो अपने पूर्व के उपन्यास से कथा एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से भिन्न था। उपन्यास का विषय उपदेशात्मक होने के साथ-साथ कल्पनात्मक स्पर्श लिए हुए था। उपन्यास की भाषा संस्कृतनिष्ठ मराठी थी।

यद्यपि इस समय कई उपन्यास लिखे जा रहे थे, किन्तु बंकिम चंद चटर्जी भारत में उपन्यास विधा के जनक के रूप में उदित हुए। उनके उपन्यास हालांकि अधिक रोमांटिक, उपदेश प्रधान और विदेशी उपन्यासों से प्रभावित थे, किन्तु बंकिम चंद चटर्जी को ही भारत में उपन्यास विधा को स्थापित करने का श्रेय जाता है।

वास्तव में नई गद्य विधाओं में उपन्यास ही एक ऐसी विधा थी, जिसमें पूरे जीवन का चित्रण हो सके। उपन्यास के बड़े कलेवर में ही कहानी, यात्रा वृतांत, संस्मरण, रेखाचित्र जैसी अन्य विधाएं सम्मिलित हो जाती थीं। इसके बाद अन्य भारतीय भाषाओं में भी उपन्यास लिखे गए। इच्छाराम सूर्यराम देसाई (गुज़राती) का हिंद अणे ब्रिटानिया (1886), महिपात्रम नीलकंठ का साधरा जेसांगा (1890), असमिया लेखक पदमनाथ गोहेन बरूआ का भानुमती (1890), रजनीकांत बरदलोई का मनोमति (1900), मलयालम में सी.वी. रमण पिल्लै का मार्तण्ड वर्मा (1891), चंदू मेनन का इंदुलेखा (1889), कन्नड़ उपन्यासकार लक्ष्मणराव गडकर का सूर्यकांत (1892) पंजाबी लेखक भाई वीर सिंह का सुंदरी (1898), मराठी लेखक हरिनारायण आप्टे का रूपनं गरची राजकन्या (1900-02), हिन्दी लेखक किशोरीलाल गोस्वामी का रज़िया बेगम (1904) आदि प्रमुख हैं।

14.4 आधुनिक भारतीय भाषाएँ

इकाई 5 में आपने आधुनिक भारतीय भाषाओं का प्रादुर्भाव तथा उसके कारणों के विषय में विस्तृत अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में हम आधुनिक साहित्य के संदर्भ में आधुनिक भारतीय भाषाओं के विषय में बात करेंगे। जैसा कि हम इकाई 5 में पढ़ चुके हैं कि आधुनिक भारतीय भाषाओं का उदय 1000 ई के आसपास से शुरू होता है। भक्तिकालीन साहित्य का विकास लगभग इन्हीं भाषाओं के माध्यम से हुआ। लेकिन अंग्रेजों के आने के पश्चात तक ये भाषाएँ संघर्ष करती रहीं। अंग्रेजों के लिए भारतीय श्रेष्ठ भाषाओं से अभिप्राय संस्कृत एवं फारसी से था। उन्होंने यहां आकर बड़ी संख्या में भारतीय कालजयी साहित्य का अनुवाद करवाया। लेकिन अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् ही भारत में आधुनिकता का प्रवेश हुआ। यह आधुनिकता का प्रवेश समाज, राजनीति, धर्म से लेकर साहित्य तक में था। साहित्य में नई विधाओं का उदय हो रहा था। वहीं दूसरी ओर ये लोकभाषाएँ अपने अस्तित्व की तलाश कर रही थीं। भारतीय साहित्यकारों का दो बिन्दुओं पर संघर्ष जारी था, एक यह कि वे लेखक की पारम्परिक, भारतीय संस्कृत प्रधान शैली को अपनाएं अथवा नई यूरोपीय पद्धति को तथा दूसरा कि नव विकसित गद्य संस्कृत/फारसी की ज़मीन पर निर्मित हो अथवा इन लोकभाषाओं पर। एक लम्बे समय तक यह संघर्ष चला। चूंकि साहित्य के नायक/नायिका बदल रहे थे, साहित्य के विषय बदल रहे थे, इसलिए न तो पारम्परिक भाषा बहुत उपयोगी रह गई थी और न ही विधाएं। तत्कालीन साहित्यकार इन क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के लिए गहरा संघर्ष कर रहे थे। इसी कारण उस दौर में इन मातृ भाषाओं को बचाने के लिए लगभग सभी भाषाओं में कविताएं लिखी गईं। खड़ी बोली हिन्दी के लिए संघर्षरत भारतेंदु की पंक्तियां यहां उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :

निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल।।

निजी प्रयासों के अतिरिक्त कई संस्थानों ने इन भाषाओं के विकास के लिए प्रयास किए - जिनमें बांग्ला में बंग भाषा प्रकाशिका सभा (1836), गुजराती में पुस्तक प्रसारक मंडली (1842), दिल्ली में द वर्नाक्युलर ट्रांसलेशन सोसाइटी (1843), दक्षिण प्राइज कमेटी (1851), मद्रास स्कूल बुक एंड वर्नाक्युलर सोसायटी (1850), द डक्कन वर्नाक्युलर ट्रांसलेशन सोसाइटी (1849) प्रमुख हैं। इन संस्थानों ने विभिन्न भाषाओं में गद्य के विकास पर जोर दिया।

वस्तुतः तत्कालीन लेखकों के लिए तीन भाषाओं - अंग्रेजी, संस्कृत/फारसी तथा मातृभाषा का ज्ञान आवश्यक था। लॉर्ड मैकाले का मानना था कि अंग्रेजी शिक्षित भारतीय विज्ञान के लिए प्रयुक्त पश्चिमी शब्दों को उधार लेकर अपनी मातृभाषा का विकास करने में सक्षम हो पाएंगे। सत्य भी यही है कि इन अंग्रेजी शिक्षित भारतीयों ने भाषा के आधुनिकीकरण में पश्चिमी भाषा एवं साहित्य से मदद ली और संस्कृत फारसी के ज्ञान से अपनी भाषाओं को समृद्ध किया।

इस समय बड़ी संख्या में प्राचीन एवं मध्यकालीन कालजयी साहित्यों का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ जिनमें से प्रमुख हैं :

गिरधर की गुजराती रामायण (1837), चिन्नय सूरी का पंचतंत्र का तेलुगू अनुवाद नीति चंद्रिका (1856), ओड़िया अनुवाद गीत गोविन्द (1840) विद्यासागर का बांग्ला में शकुंतला (1854), मराठी में भास्कर दामोदर पलांडे का विक्रमोर्वशी (1854) बांग्ला में नीलमणि पाल का रत्नावली (1849), मराठी में परशुराम पंत गोडबोले का वेणुसंहार (1857) आदि।

इसी समय में अंग्रेजी भाषा से भी प्रचुर अनुवाद हुए जिनमें टेल्स फ्रॉम शेक्सपीयर, एसप के फेबल्स, पिलग्रिम्स प्रोग्रेस, रॉबिंसन क्रूजो, रसेलास, अरेबियन नाइट्स आदि प्रमुख हैं।

14.5 आधुनिक भारतीय कालजयी साहित्य एवं उनके अनुवाद

आधुनिक भारतीय साहित्य का भरपूर मात्रा में अनुवाद हुआ। अनुवाद की यह परम्परा तब से शुरू होकर अब तक कायम है। सबसे पूर्व हम यहां उपन्यासों और उनके अनुवाद की चर्चा करेंगे :

उपन्यास एवं उनके अनुवाद

बांग्ला उपन्यासकार विभूतिभूषण बंधोपाध्याय के उपन्यास पाथेर पांचाली (1929) का अंग्रेजी अनुवाद टी. डब्ल्यू क्लार्क एवं तारापद मुखर्जी ने पाथेर पांचाली : साँग ऑफ द रोड के नाम से किया। इससे पूर्व सत्यजीत रे ने इसी नाम से 1955 में फिल्म बनाई, जिसने अपार लोकप्रियता हासिल की। हिन्दी के उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के उपन्यास गोदान का अनुवाद हिन्दी के ही एक अन्य बड़े रचनाकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्सयायन अज्ञेय ने किया। गोदान का एक अंग्रेजी अनुवाद गोर्डन सी. रोडरमल ने द गिफ्ट ऑफ अ काव के नाम से अंग्रेजी में किया। अज्ञेय ने अपने अंग्रेजी अनुवाद में गोदान की कथा के केवल उस भाग को लिया जो गांव तक सीमित था। वस्तुतः यदि देखा जाए तो लगभग सभी अनुवादकों ने अपने अनुवादों में स्वायतता बरती और पूरे उपन्यास के अनुवाद के स्थान पर उसमें कुछ परिवर्तन किए। मलायलम उपन्यासकार तकशि शिवशंकर पिल्ले के कालजयी उपन्यास चेम्मीन (1956) का अंग्रेजी अनुवाद करते समय अनुवादक वी. के नारायणन मेनन ने उसके एक चौथाई भाग को ही कथा रूप में ही लिया। इसी तरह हिन्दी के एक बेहद चर्चित एवं स्वतंत्र भारत की राजनीतिक समस्याओं पर लिखे आंचलिक उपन्यास रागदरबारी के अंग्रेजी अनुवाद में भी इसी तरह की छेड़छाड़ की गई। चेम्मीन के डोगरी सहित कई अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हुए।

वर्तमान समय में आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए कई संस्थाएं काम कर रही हैं जिनमें से प्रमुख हैं - साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारतीय ज्ञानपीठ आदि। इन संस्थाओं ने प्रचुर

मात्रा में भारतीय कालजयी साहित्य की न केवल पहचान की है अपितु उनका विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी करवाया है।

यहां कुछ अनुवादों की सूची दी जा रही है जो मूल भारतीय भाषाओं से हिन्दी में किए गए हैं :

पुस्तक	लेखक/संपादक	अनुवादक	मूल भाषा
आकाश	भवेन सैकिया	नवारुण वर्मा	असमिया
आजादी की छांव में	बेगम अनीस किदवई	नूर नबी अब्बासी	उर्दू
अलीक मानव	सैयद मुस्तफा सिराज	मनमोहन ठाकौर	बांग्ला
आदमी और जंगल	उमाकांत शर्मा	सत्यदेव प्रसाद	असमिया
उसने जंगल को जीता	केसव रेड्डी	जे.एल. रेड्डी	तेलुगु
एक घेरे से बाहर	समुत्तिरम	विजयलक्ष्मी सुंदरराजन	तमिल
देशकालपात्र	जे.पी. दास	राजेन्द्र प्रसाद मिश्र	ओड़िया
दवा	पुनत्तिल कुंजब्दुल्ला	एन.ई. विश्वनाथ अय्यर	मलयालम
किस पहि खोलूं गठरी	कर्तार सिंह दुग्गल	फूलचंद मानव	पंजाबी
नामघरैया	अतुलानन्द गोस्वामी	सत्यदेव प्रसाद	असमिया
पगडंडियां	सी. राधाकृष्णन	विनीता डोगरा	मलयालम
धरती की हंसी	लूमर डाइ	सत्यदेव प्रसाद	असमिया
धान	पी. वत्सला	राकेश कालिया	मलयालम
शहतूतों वाला कुंआ (तूतां वालां खू)	सोहन सिंह सीतल	सुदीप	पंजाबी
देश की बात	सखाराम गणेश देउस्कर	बाबूराव विष्णु पराड़कर	बांग्ला

आधुनिक काल में आधुनिक भारतीय भाषाओं में लिखे साहित्य का परस्पर अनुवाद प्रचुर मात्रा में हुआ। अंग्रेजी में रूपा तथा पेंगुइन पब्लिशर्स ने ऐसी कई रचनाओं के अंग्रेजी में अनुवाद करवाए। अंग्रेजी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में हुए अनुवादों का संक्षिप्त विवरण यहां दिया जा रहा है :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गोरा के लगभग सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुए। आशापूर्णा देवी के *प्रथम प्रतिश्रुति* का अंग्रेजी अनुवाद इंदिरा चौधुरी ने किया। बाल विवाह और बालवधु के जीवन के संघर्ष पर लिखा यह उपन्यास बांग्ला साहित्य में बेहद महत्व रखता है। इसी तरह लक्ष्मी हाल्मस्ट्रॉम ने तमिल दलित लेखिका बामा के बेहद चर्चित दो उपन्यासों - *करक्कु* और *संगति* का अनुवाद किया।

भारत के विभाजन और उसकी त्रासदी पर लिखा भीष्म साहनी का उपन्यास *तमस* भी विभिन्न भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से काफी सराहा गया। तमस का असमिया अनुवाद तीर्थ फूकन ने, कश्मीरी में रफ़ीक मसूदी ने, मैथिली में अमरेश पाठक ने, सिन्धी में कृष्ण राही ने, तेलुगु में वाई. लक्ष्मीप्रसाद ने और मराठी में चंद्रकात पाटील ने किया। हिन्दी उपन्यासकार अमृतलाल नागर के उपन्यास अमृत और विष का तेलुगु अनुवाद पी. आदेश्वर राव और उर्दू अनुवाद प्रकाश फिक्री ने किया। पंजाबी उपन्यास गुरदयाल सिंह के अध चानणी रात का तेलग अनवाद वेमराज भानमर्ति ने सगम वेननेला रात्रि शीर्षक से किया। बांग्ला उपन्यासकार

बिभूतिभूषण उपाध्याय का उपन्यास पाथेर पांचाली द *साँग ऑफ द रोड* के नाम से अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ जिसका अनुवाद टी.डब्ल्यू क्लार्क ने किया। इसी तरह *अपराजितो* का अनुवाद तारापद मुखर्जी ने किया। सत्यजित रे की *पाथेर पांचाली* को सिने दर्शकों ने खूब सराहा। 1930 में गोपीनाथ मोहंती कृत ओड़िया उपन्यास परजा का अंग्रेजी अनुवाद बिक्रम के. दास ने किया। दलित जीवन और उसके दंश पर लिखा यह उपन्यास निश्चित ही कालजयी रचना है। यशपाल का भारत विभाजन पर लिखा उपन्यास *झूठा सच* का अंग्रेजी अनुवाद दिस इज नॉट दैट डॉन शीर्षक से आनंद ने किया। राग दरबारी का अंग्रेजी अनुवाद जिलियन राइट ने किया। कमलेश्वर के हिन्दी उपन्यास कितने पाकिस्तान का अंग्रेजी अनुवाद अमीना काज़ी अंसारी ने पार्टिशियन के नाम से किया। भारत-पाक विभाजन पर आधारित यह उपन्यास हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण धरोहर है। कृष्णा सोबती का मित्रो मरजानी स्त्री विमर्श पर लिखा एक महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें स्त्री को उसकी दैहिक शुचिता से ऊपर उठकर दिखाया गया है जिसका अनुवाद टू हैल विद यू मित्रो के नाम से हुआ है और ऐ लड़की का अंग्रेजी अनुवाद लिसन गर्ल शीर्षक से हुआ। मराठी लेखिका किरण नागरकर का उपन्यास सात सक्कम त्रेचलीस का अंग्रेजी अनुवाद सेवन सिक्सेज़ आर फॉर्टी थ्री नाम से शुभा स्ली ने किया। यू. आर. अनन्तमूर्ति के उपन्यास संस्कार का लगभग सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासकारों में फणीश्वर नाथ रेणु का मैला आंचल, राही मासूम रज़ा का आधा गांव (द विलेज डिवाइडेड - जिलियन राइट), गुरदयाल सिंह का *परसा,* मुल्क राज आनंद का अनटचेबल (अछूत), झुम्पा लाहिड़ी का *द नेमसेक,* अनीता देसाई का *बाय बाय ब्लैकबर्ड,* किरण देसाई का *इनहैरिटेंस ऑफ लॉस,* विक्रम सेठ का *द गोल्डन गेट, अ सूटेबल ब्वॉय (एक अच्छा सा लड़का),* खुशवंत सिंह का *ट्रेन टू पाकिस्तान (पाकिस्तान मेल),* अरुंधती राय का *गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स (मामूली चीज़ों का देवता),* निर्मल वर्मा का *अंतिम अरण्य,* मराठी उपन्यासकार वी.एस. खांडेकर के ययाति आदि प्रमुख हैं।

कहानी

उपन्यास की तरह कहानियों के भी विभिन्न भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद हुए। इन्हीं अनुवादों के माध्यम से ये रचनाकार क्षेत्रीय सीमाएं लाँघकर राष्ट्रीय पहचान बनाने में सक्षम हुए। हिन्दी लेखक फणीश्वर नाथ रेणु की कहानियों का असमिया अनुवाद तिलक हज़ारिका ने किया। मलयालम रचनाकार वैक्कम मोहम्मद बशीर की कहानियों का बांग्ला अनुवाद निलीना अब्राहम ने, हिन्दी रचनाकार निर्मल वर्मा के कहानी संग्रह कव्वे और काला पानी का बांग्ला अनुवाद काक ओ कालापानी के नाम से माया गुप्त ने किया। निर्मलप्रभा बारदोलोई की असमिया कहानियों का बांग्लाा अनुवाद सुजीत चौधरी ने किया। उर्दू में कुर्रतुल-ऐन हैदर बेहद पढ़ी जाने वाली लेखिका हैं। उनकी कहानियों पतझड़ की आवाज़ का डोगरी में अनुवाद उषा व्यास ने किया। ओड़िया रचनाकार मनोज दास की कहानियों का गुजराती अनुवाद रेणुका सोनी ने किया। शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की कहानियों का संस्कृत अनुवाद बिहारीलाल मिश्र ने किया। राजेन्द्र सिंह बेदी की उर्दू कहानियों का *हड्डिआं ते फुल* शीर्षक से पंजाबी अनुवाद प्रीतम सिंह ने किया।

कविता

कैफी आज़मी की उर्दू कविताओं का बांग्ला में अनुवाद ज्योतिभूषण चाकी ने किया। सीताकांत महापात्र की ओड़िया कविताओं का डोगरी अनुवाद डोगरी की प्रतिष्ठित लेखिका पद्मा सचदेव ने और ओड़िया अनुवाद राजेन्द्र प्रसाद मिश्र ने किया। मराठी कवि तुकाराम के कविता संग्रह अभंग-संचयन का अंग्रेजी अनुवाद दिलीप चित्रे ने सेज़ तुका शीर्षक से किया। अयप्पा पणिक्कर की मलयालम कविताओं का हिन्दी अनुवाद रति सक्सेना ने किया। मैथिली शरण गुप्त का साकेत, दिनकर का उर्वशी विभिन्न भाषाओं में अनुदित होकर काफी चर्चित हुए। जयशंकर प्रसाद (हिन्दी), रमाकांत रथ (ओड़िया), केदारनाथ सिंह, धूमिल, भवानी प्रसाद मिश्र, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के राजस्थानी सहित कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुए। मलयाली कवि अयप्पा पणिक्कर की कविताओं का तमिल अनुवाद नील पद्मनाभन् ने किया। सीताकांत महापात्र के कविता संग्रह शब्दर आकाश का उर्दू अनुवाद करामत अली करामत ने किया। मराठी की दलित कहानियों का अनुवाद वक़ार क़ादरी ने दलित कथा शीर्षक से उर्दू में किया जिसने दलित आंदोलन के प्रचार में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

अन्य विधाएं

उपन्यासों के अतिरिक्त अन्य विधाओं में लिखित साहित्य का भी प्रचुर मात्रा में अनुवाद हुआ।

कन्नड़ लेखक गिरीश कर्नाड के नाटकों - हयवदन, तुगलक, नागमण्डल का अंग्रेजी अनुवाद ए.बी. धारवड़कर ने किया। मराठी नाटककार विजय तेंदुलकर जिनके नाटक केवल मराठी ही नहीं अपितु हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी काफी चर्चित रहे, के *खामोश! अदालत चालू आहे* और *घासीराम कोतवाल* के हिन्दी सहित कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुए। हबीब तनवीर का चरणदास चोर, धर्मवीर भारती के *अंधायुग*, सुरेन्द्र वर्मा के नाटक आदि के प्रचुर अनुवाद हुए।

जीवनियों के भी बड़ी संख्या में अनुवाद हुए। विष्णु प्रभाकर की जीवनी *आवारा मसीहा* का असमिया सहित विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुआ। कृष्ण कृपलानी की गांधी : ए लाइफ का असमिया अनुवाद कीर्तिनाथ हज़ारिका ने किया। ज्योतिबाराव फुले के मराठी-संवाद गुलामगीरी का बांग्ला अनुवाद वीणा आलासे द्वारा किया गया। महात्मा गांधी की आत्मकथा का राजस्थानी अनुवाद आईदान सिंह भाटी ने किया। जवाहर लाल नेहरू के डिस्कवरी ऑफ इंडिया का अनुवाद भी लगभग सभी भारतीय भाषाओं में हुआ।

आलोचना, काव्यशास्त्र, निबंध संग्रह आदि का आधुनिक समय में खूब अनुवाद हो रहा है। नगेन्द्र के ,रस सिद्धान्त का पंजाबी अनुवाद नवरतन कपूर ने, गोपीचंद नारंग की उर्दू साहित्यिक आलोचना साख्तियात पस-साख्तियात और मशरिकी शेरियात का पंजाबी अनुवाद जगबीर सिंह ने सरंचनावाद, उत्तर-सरंचनावाद अते पूर्वी काव शास्तर शीर्षक से किया। नरेन्द्र यादव के मराठी संस्मरण आमचा बाप एनी अम्मी का पंजाबी अनुवाद दलबीर सिंह ने किया।

परस्पर अनुवादों की यह शृंखला काफी लम्बी है जिसमें से कुछ की यहां चर्चा की गई है। भारतीय भाषाओ में परस्पर अनुवाद के माध्यम से ये भाषाएँ एक दूसरे की लेखन परम्परा से परिचित हो सकीं। कालजयी रचनाओं के अनुवाद के साथ सबसे बड़ी चुनौती यह है कि अनुवाद में भी ये रचनाएं वैसा ही आस्वाद पैदा कर सकें जैसा कि मूल में है। सांस्कृतिक अनुवाद इस तरह की कई चुनौतियां अनुवादकों के सामने प्रस्तुत करता है जब अनुवादक मूल के सही पर्याय और सही आस्वाद को पाने का संघर्ष करते हैं।

14.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने आधुनिकता का अर्थ समझते हुए भारत के संदर्भ में आधुनिक काल, आधुनिक काल के प्रादुर्भाव में महत्वपूर्ण घटकों की भूमिका को पढ़ते हुए आधुनिक भारतीय कालजयी रचनाओं के विषय मे विस्तार से अध्ययन किया। इस इकाई के माध्यम से हम विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखित साहित्य से भी परिचित हो सके। इन रचनाओं का विस्तृत अध्ययन हम इनके स्वतंत्र अध्ययन के माध्यम से भी कर सकते हैं। मुद्रण के प्रादुर्भाव, आधुनिक शिक्षा और अनुवाद कार्य ने भारतीय साहित्य का नई विधाओं से परिचय करवाया जिनमें कालान्तर में कई महत्वपूर्ण रचनाएं रची गईं। इनके स्वतंत्र लेखन और अनुवाद ने भारतीय साहित्य को केवल समृद्ध ही नहीं किया अपितु कई रचनाओं ने विश्व में ख्याति भी दिलवाई। इन भाषाओं मे रचित कालजयी साहित्य भारतीय साहित्य की धरोहर है।

14.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. आधुनिक भारतीय कालजयी साहित्य से आपका क्या तात्पर्य है?
2. आधुनिक भारतीय भाषाओं की महत्वपूर्ण विधाओं की चर्चा कीजिए।
3. उपन्यास के विकासक्रम पर प्रकाश डालिए।
4. मुद्रण के प्रादुर्भाव से साहित्य लेखन में क्या परिवर्तन आए, प्रकाश डालिए।
5. आधुनिकता से आप क्या समझते हैं?
6. भारतीय आधुनिक काल के महत्वपूर्ण घटक कौन-कौन से हैं?
7. कुछ महत्वपूर्ण आधुनिक भारतीय कालजयी रचनाओं का परिचय दीजिए।

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- दामोदरन, के:, 2001, *भारतीय चिन्तन परम्परा,* अनुवाद : जी. श्रीधरन, नई दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस।
- वर्मा, धीरेन्द्र (संपा.), *हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पारिभाषिक शब्दावली,* ज्ञानमण्डल लिमिटेड, तृतीय संस्करण।
- चतुर्वेदी, रामस्वरूप, *हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,* इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन।
- देसाई, ए. आर, 2000, *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि,* अनुवादः प्रयाग दत्त त्रिपाठी, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड।
- दास, सिसिर कुमार, 1991, *ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर,* सभी खण्ड, दिल्ली, साहित्य अकादमी।
- बेन्सन, युजीन एवं कॉनोली, एल.डब्ल्यू(संपा.), 2005, *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ पोस्ट कोलोनियल लिटरेचर इन इंग्लिश,* रुटलेज पब्लिशर्स।

MPDD/IGNOU/P.O. 1T/May, 2014

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ISBN: 978-81-266-6678-2